दंसणमूलो धम्मो

आत्मधर्म

श्री दि० जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र) का मुखपत्र

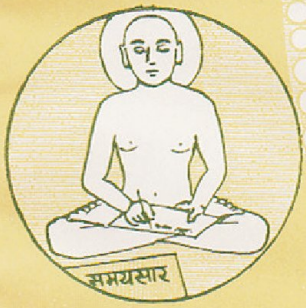

जा बानी के ज्ञानतें, सूझे लोकालोक।
सो बानी मस्तक धरौं, सदा देत हौं धोक॥

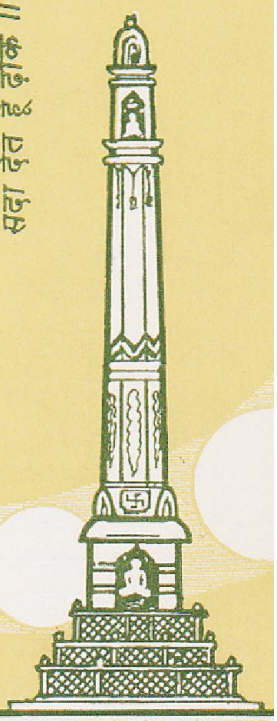

सम्पादक : डॉ० हुकमचन्द भारिल्ल
कार्यालय : टोडरमल स्मारक भवन, ए-४, बापूनगर, जयपुर ३०२००४

वर्ष ३३ : अंक १२ [३९६] जून, १९७८

आत्मधर्म [३९६]

[हिन्दी, गुजराती, मराठी तथा कन्नड़ — इन चार भाषाओं में प्रकाशित
जैन समाज का सर्वाधिक बिक्रीवाला आध्यात्मिक मासिक]

संपादक :
डॉ० हुकमचन्द भारिल्ल

प्रबंध संपादक :
अखिल बंसल

कार्यालय :
श्री टोडरमल स्मारक भवन
ए-४, बापूनगर, जयपुर ३०२००४

प्रकाशक :
श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (भावनगर-गुजरात)

शुल्क :
आजीवन : १०१ रुपये
वार्षिक : ६ रुपये
एक प्रति : ५० पैसे

मुद्रक :
सोहनलाल जैन
जयपुर प्रिण्टर्स, जयपुर

क्या

१ सांची तो गंगा यह.....
२ जीवन ही बदल डाला
३ संपादकीय : एक और इंटरव्यू
४ तं सुद्धणयं वियाणीहि
[समयसार प्रवचन]
५ वह मुक्तिसुंदरी का नाथ होता है
[नियमसार प्रवचन]
६ द्रव्यसंग्रह प्रवचन
७ ज्ञान-गोष्ठी
८ समाचार दर्शन
९ पाठकों के पत्र
१० प्रबंध संपादक की कलम से

इस बार हमने सभी सम्मानीय ग्राहकों को आगामी वर्ष का चंदा भेजने हेतु मनिऑर्डर फार्म आत्मधर्म के अंक के साथ भेजे हैं। उनमें से काफी मनिऑर्डर अभी आना शेष हैं। जिन भाईयों ने मनिऑर्डर फार्म अभी तक नहीं भेजे हों वे कृपया तुरंत भेजें **अन्यथा जुलाई मास से उनको आत्मधर्म भेजने में असमर्थ रहेंगे।**

– प्रबंध संपादक

आ त्म ध र्म

शाश्वत सुख का, आत्म शान्ति का, प्रगट करे जो मर्म।
समयसार का सार, सभी को प्रिय, यह आतम धर्म॥

वर्ष : ३३ [३९६] अंक : १२

सांची तो गंगा यह वीतराग वानी।
अविच्छिन्न धारा निजधर्म की कहानी॥
सांची तो गंगा यह..... ॥१॥

जामें अति ही विमल अगाध ज्ञानपानी।
जहाँ नहीं संशयादिपंक की निशानी॥
सांची तो गंगा यह..... ॥२॥

सप्तभंग जहं तरंग उछलत सुखदानी।
संतचितमरालवृंद रमैं नित्य ज्ञानी॥
सांची तो गंगा यह..... ॥३॥

जाके अवगाहन तैं शुद्ध होय प्रानी।
'भागचंद' निहचै घटमांहि या प्रमानी॥
सांची तो गंगा यह..... ॥४॥

जीवन ही बदल डाला

[इस स्तंभ में उन आत्मार्थियों के महत्त्वपूर्ण पत्र प्रकाशित किये जायेंगे, जिनके जीवन में आध्यात्मिक रुचि आत्मधर्म के माध्यम से जगी है।]

मैं अपने पूर्व जीवन पर दृष्टिपात करता हूँ तो मैं एक ऐसा विद्यार्थी था जो अपने को जैन कहने में लज्जा अनुभव करता था। बाद में जब एक दिन कौतूहलवश मंदिर पहुँचा तो वहाँ मुझे पंडित भगवानदासजी मिले। उन्होंने मुझे हिंदी आत्मधर्म देकर बताया कि इसमें सोनगढ़ के संत कानजीस्वामी के प्रवचन आते हैं। साथ ही उनके तथा उनके सिद्धांतों के बारे में थोड़ा बहुत बताया। स्वामीजी के बारे में बहुत कुछ उल्टी-सीधी बातें मैंने पहले ही सुन रखी थीं, अत: जब मैंने उनसे तर्क-वितर्क किया तो पंडितजी ने मेरी शंकाओं का समुचित समाधान करते हुये निकट भविष्य में ही संपन्न होनेवाले भोपाल पंच कल्याणक में गुरुदेवश्री को निकट से देखने और उनके प्रवचन सुनने की प्रेरणा दी।

मैं अपने कौतूहल को शांत करने के लिये यथासमय भोपाल पहुँचा।

गुरुदेव के प्रथम प्रवचन से ही मेरा जीवन बदल गया। उनकी वाणी ओजपूर्ण थी, सहज एवं सरल थी; उसमें नाटकीयता किंचित् भी न थी। वाणी से ही नहीं; वे अपने हाथों, मुख इत्यादि से आह्लाद प्रकट करके अपने मर्म को समझा रहे थे। उनकी वाणी से वैराग्य का झरना बह रहा था। उनके मुख से प्रथम वाक्य निकला—'भगवान आत्मा! तू तो चैतन्यनूर का पूर है और अपने को भूलकर चतुर्गति में भ्रमण कर रहा है। मेंहदी के पत्तों में जैसे लाल रंग भरा हुआ है, वैसे ही राग के काल में आत्मा राग से भिन्न है। आठ वर्ष की बालिका भी अभी अपने स्वरूप का अनुभव कर सकती है।'

शाम को 'पद्मनंदिपंचविंशतिका' के प्रवचन में मुनिराजों की महिमा गाते-गाते वे झूम उठते थे और गद्य को भी पद्य में गाने लगते थे। यह सब देखकर और सुनकर मेरा भ्रम निवारण हो गया।

उस समय मैं Civil Engg. II में पढ़ता था। लौकिक अध्ययन का रस उड़ जाने से मैंने उसे छोड़ दिया।

अब तो मेरा विचार इस मनुष्य भव को भोगों में ही न गँवाकर आत्महित के साधन में लगाने का ही बन गया है और सोनगढ़ तथा जयपुर में रहकर अध्यात्म और जैनदर्शन का गहरा अध्ययन करने का संकल्प है।

— संतोषकुमार जैन, दमोह (म०प्र०)

सम्पादकीय

वह तो नाममात्र का भी जैन नहीं

एक और इंटरव्यू : कानजीस्वामी से

''स्वामीजी 'खाओ, पीओ और मौज उड़ाओ' के सिद्धांतों का प्रचार कर रहे हैं।'' आदि न जाने कैसी-कैसी बे-सिर-पैर की अफवाहें आजकल निहितस्वार्थी लोगों द्वारा बुद्धिपूर्वक फैलाई जा रही हैं।

उक्त संदर्भ में स्वामीजी के विचार समाज तक पहुँचें, इस पवित्र भावना से संपादक आत्मधर्म द्वारा कुराबड़ (राजस्थान) में पंच कल्याणक के अवसर पर दीक्षाकल्याणक के दिन दिनांक १८-५-७८ को पूज्य स्वामीजी से लिया गया यह पाँचवाँ इंटरव्यू आत्मधर्म में जिज्ञासु पाठकों की सेवा में प्रस्तुत है।

''जो मद्य-माँस-मधु का सेवन करता है, जिनमें अगणित त्रसजीव पाये जाते हैं—ऐसे पंच उदुम्बर फलों को खाता है; वह तो नाममात्र का भी जैन नहीं, जिनवाणी सुनने का भी पात्र नहीं।''

उक्त शब्द पूज्य स्वामीजी ने तब कहे जब उनसे पूछा गया कि ''आप तो कहते हैं कि आत्मा के अनुभव के बिना अर्थात् सम्यग्दर्शन हुए बिना संयम अर्थात् सम्यक्चारित्र नहीं होता। तो क्या मद्य-माँस-मधु का त्याग भी सम्यग्दर्शन होने के बाद होगा?''

अपनी बात को स्पष्ट करते हुए वे आगे बोले ''भाई! इन चीज़ों का सेवन तो नामधारी जैन को भी नहीं होना चाहिये। प्रत्येक जैनमात्र को सप्त व्यसनों का त्याग और अष्ट मूलगुणों का धारण सर्वप्रथम होना चाहिये।

जरा विचार तो करो ! क्या शराबी कबाबी को आत्मा का अनुभव हो सकता है ? तुम आत्मा के अनुभव और सम्यग्दर्शन की बात करते हो, वह तो जिनवाणी सुनने का भी पात्र नहीं है।''

निरंतर अध्ययन के लिये समीप रखे हुए शास्त्रों में से पुरुषार्थसिद्ध्युपाय उठाकर उसमें से ७४वाँ छंद निकालकर दिखाते हुए बोले—

''लो, देखो साफ-साफ लिखा है—

अष्टावनिष्टदुस्तरदुरितायतनान्यमूनि परिवर्ज्य।
जिनधर्मदेशनाया भवन्तिपात्राणि शुद्धधियः ॥७४॥

दु:खदायक दुस्तर और पाप के स्थान ऐसे आठ पदार्थों का परित्याग करके निर्मल बुद्धिवाले पुरुष जैनधर्म के उपदेश को सुनने के पात्र होते हैं।''

''और रात्रि भोजन ?''

मेरे द्वारा यह कहे जाने पर बोले—''रात्रि भोजन में माँस भक्षण का दोष है। रात्रि में अनेक कीड़े-मकोड़े भोजन में पड़ जाते हैं। अथाना-अचार भी नहीं खाना चाहिये, उसमें भी त्रसजीव पड़ जाते हैं। अनछना पानी भी काम में नहीं लेना चाहिये। अनंत काय जमीकंद, अमर्यादित मक्खन आदि का सेवन करना भी ठीक नहीं। हमने तो ६९ वर्ष से रात्रि में पानी की बूँद भी नहीं ली है। विक्रम सं० १९६५-६६ से अचार भी नहीं खाया है। अनछना पानी पीना तो बहुत दूर, काम में भी नहीं लेते। जमीकंद आदि खाने का तो प्रश्न ही नहीं उठता।

''और कुछ ?''

''और कुछ क्या ? चरणानुयोग के शास्त्रों में जो आचरण सामान्य जैनी के लिये बताया गया है, उसका पालन प्रत्येक जैनी को अवश्य करना चाहिये।''

''यदि ऐसी बात है तो आप यह सब कहते क्यों नहीं हैं ?''

''कह तो रहे हैं तुमसे, और कैसे कहना होता है ?''

''हमसे तो कह रहे हैं, पर प्रवचन में तो नहीं कहते ?''

''प्रवचनों में भी कहते रहते हैं। अभी बैंगलोर, हैदराबाद, बम्बई आदि में ही कहा था। तुमने नोट भी किया था, आत्मधर्म (अप्रेल, १९७८) में छापा भी है।''

''वहाँ तो कहा था, पर सोनगढ़ में तो नहीं कहते ?''

''वहाँ भी कहते हैं। मद्य-माँस की तो बात ही क्या, सोनगढ़ में तो कोई रात्रि भोजन भी नहीं करता। जमीकंद और अनछने पानी का प्रयोग भी नहीं करते।''

''यह तो ठीक कि वहाँ कोई रात्रि में भोजन आदि नहीं करता और आप कहते भी हैं, पर कभी-कभी ही कहते हैं, हमेशा क्यों नहीं कहते ? आपको ऐसी बात कहते हमने तो बहुत कम सुना है ?''

''तुम जैसे लोग हमसे तत्त्व का मर्म सुनने आते हैं। अनुभव की—अध्यात्म की गहरी बातें सुनने आते हैं; तुमसे ऐसी बातें कहें ? भाई ! बात यह है हम पहिले तो बहुत कहते थे। पर अब ऐसी बातों की अपेक्षा तत्त्व की गहरी चर्चा करने का विकल्प आता है।

मूल बात तो एक आत्मा के अनुभव की है, उसके बिना यह मनुष्य भव व्यर्थ ही चला जायेगा। यह सब तो अनंत बार किया, पर आत्मा के अनुभव बिना इससे क्या होता है ? भव का अभाव तो होने से रहा। आत्मानुभव के पूर्व इनके सेवन के अभावमात्र से आत्मा का अनुभव हो जायेगा—ऐसी बात नहीं है। जब तक राग से भिन्न आत्मा अपने अनुभव में नहीं आयेगा तब तक यह सब ठीक ही है, कुछ विशेष दम नहीं है—इन बातों में।

इन बातों की अधिक चर्चा से लाभ भी क्या है ? जैन समाज में मद्य-माँस तो है ही नहीं। जब इन चीज़ों का कोई सेवन ही नहीं करता तब इनकी चर्चा बार-बार करने से लाभ भी क्या है ?''

जब मैंने कहा कि ''जैन समाज में भी यह रोग लगने लगा है''—

तब आश्चर्य व्यक्त करते हुए बोले ''क्या कहते हो ? ऐसा नहीं हो सकता।''

''नहीं साब हो रहा है।''

''हम तो तुम्हारे मुँह से सुन रहे हैं, यह तो बहुत बुरी बात है। कैसा समय आ गया है। इस अमूल्य मनुष्यभव और जैनकुल में यह सब ? क्या होगा इनका ? कहाँ जायेंगे ऐसे लोग ?'' कहते-कहते एकदम गंभीर हो गये।

उनकी गंभीरता को भंग करते हुए जब मैंने कहा—''इसमें क्या ? यह तो सब परद्रव्य

हैं। जब एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कुछ भला-बुरा करता ही नहीं, एक द्रव्य का दूसरे पर कोई प्रभाव ही नहीं पड़ता, तब फिर क्यों इनके खाने-पीने का आनंद छोड़ा जाये ?''

तब कहने लगे—''भाई तुम कैसी बातें करते हो ? खाने-पीने में आनंद है ही कहाँ ? ये सब तो दु:खरूप हैं, दु:ख छोड़ने की बात कह रहे हैं, आनंद छोड़ने की नहीं। आनंद तो अपनी आत्मा में है। जब हम आत्मा का आश्रय लेंगे, आत्मा का अनुभव करेंगे, तब आनंद की प्राप्ति होगी।

यह बात तो पूर्णत: सत्य ही है कि एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का भला-बुरा नहीं करता, पर जब यह आत्मा अज्ञान दशा में पर के लक्ष्य से स्वयं राग-द्वेष-मोहरूप भाव करता है तब स्वयं दु:खी होता है। यद्यपि परपदार्थ सुख-दु:ख के कारण नहीं हैं, तथापि उनके सेवन का राग तो दु:खरूप है, दु:ख का कारण है। अभक्ष्य पदार्थ राग के आश्रयभूत निमित्त हैं, अत: उनके प्रति राग छोड़ना इष्ट है। राग छूटने पर वे स्वयं छूट जाते हैं, अत: यह भी कहा जाता है कि उन्हें छोड़ा।

एक द्रव्य दूसरे का कर्ता नहीं—यह बात भोगों की पुष्टि के लिये नहीं कही जाती, अपितु वस्तु के सही स्वरूप को बताने के लिये कही जाती है।

जो व्यक्ति इस महान सिद्धांत से भोग की पुष्टि निकाले उसके लिये हम क्या करें ? वह तो ऐसी बात सुनने का भी पात्र नहीं है।''

जब उन्होंने यह कहा तो मैंने तत्काल बात को पकड़ते हुए कहा—''इसलिये तो कहते हैं कि आप अपात्रों को ऐसी बातें क्यों समझाते हैं ?''

मुस्कराते हुए बोले—''हम अपात्रों को कहाँ समझाते हैं ? हम तो तुम जैसे पात्रों को समझाते हैं। जो हमारी बातों को यहाँ-वहाँ से सुनके उल्टा-सीधा अर्थ निकालते हैं, वे हमारे पास आते ही कहाँ है ?

समय निकालकर जो हमारे पास आते हैं, महीनों रहते हैं—ऐसे पात्र जीवों को भी न बतावें तो किसे बतावें।

हमारे पास आनेवालों ने तो कभी ऐसा अर्थ निकाला नहीं।''

''तो ठीक है तो आपके पास सोनगढ़ आते हैं, महीनों रहते हैं, उनसे ही ये बातें कहा करें। जब आप बाहर जाते हैं, वहाँ क्यों कहते हैं ?''

''हम जहाँ भी जाते हैं, हमें सुनने तो पात्र जीव ही आते हैं। क्योंकि सब जानते हैं कि हमारे पास कोई राग-रंग की बात तो है नहीं—हमारे पास तो शुद्ध आत्मा की बात है, उसे सुनने ही जो आते हैं, उन्हें हम सुनाते हैं। अत: हम चाहे जहाँ हों—सोनगढ़ में या बाहर, कहीं भी—हमारे पास तो एक ही बात है, सो वही सबसे कहते हैं।''

''आप यह भी तो कहते हैं कि कोई किसी को समझा नहीं सकता। फिर भी आप समझाते हैं ? प्रवचन करते हैं ?''

''कोई किसी को समझा नहीं सकता, यह बात पूर्णत: सही है। हमारी बात तो बहुत दूर, भगवान भी नहीं समझा सकते। यदि समझा सकते होते तो फिर आज दुनिया में कोई नासमझ नहीं होता। भगवान जैसे समझानेवाले मिले, यह जगत तो फिर भी न समझा, फिर हमारी क्या विसात् ?

हम तो सभी को समझाना चाहते हैं। पर जो स्वयं समझने का यत्न करते हैं, उन्हें उनके कारण स्वयं समझ में आ जाता है। जो यत्न नहीं करते, उनकी समझ में नहीं आता है। हम तो निमित्त मात्र हैं।

रही बात यह कि हम क्यों समझाते हैं, क्यों प्रवचन करते हैं ? सो भाई ! बात यह है कि यह जानते हुए भी कि हम किसी को समझा नहीं सकते, समझाने का भाव आये बिना नहीं रहता। हमारी ही क्या समस्त ज्ञानियों की यही दशा है। आचार्यों की भी यही श्रद्धा थी—फिर भी उन्हें समझाने का भाव आये बिना रहा नहीं। यदि ऐसा न होता तो संपूर्ण जिनागम की रचना कैसे होती ? फिर तो देशनालब्धि भी न रहती।''

''देशनालब्धि के बिना तो सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति ही नहीं होती ?''

''यह बात ठीक है कि सम्यग्दर्शन के पूर्व देशनालब्धि होती है, पर देशनालब्धि से सम्यग्दर्शन होता है—यह बात नहीं। क्योंकि देशनालब्धि तो निमित्तमात्र है। चार लब्धियाँ तो अनेक बार प्राप्त हुईं, पर सम्यग्दर्शन नहीं हुआ। पाँचवीं करणलब्धि हो तो नियम से सम्यग्दर्शन होता है। करणलब्धि उपादानरूप है, अत: कार्य का नियामक तो उपादान ही रहा।''

''तो क्या आप निमित्त को नहीं मानते ?''

''निमित्त को निमित्त मानते हैं, निमित्त को कर्ता नहीं मानते। कर्ता वह है भी नहीं। कर्ता की व्याख्या आचार्य अमृतचंद्र ने इस प्रकार दी है —

'य: परिणमति स कर्ता।' *(समयसार कलश, ५१)*

जो कार्यरूप स्वयं परिणमित हो, उसे कर्ता कहते हैं।

उपादान स्वयं कार्यरूप परिणमित होता है, अत: वास्तविक कर्ता तो वही है।''

''कहीं-कहीं निमित्त को भी कर्ता कहा है न ?''

''निमित्त को भी व्यवहार से कर्ता कहा जाता है। वास्तविक कर्ता तो उपादान ही है। जहाँ निमित्त को कर्ता कहा हो, उसे व्यवहारनय से किया गया उपचरित कथन जानना चाहिये।''

''आपकी आत्मा की बात है तो बहुत अच्छी, पर है बहुत कठिन ?''

''कठिन तो है, पर अशक्य नहीं। यदि कोई पुरुषार्थ करे तो समझ में आ सकती हे।''

''जन साधारण की समझ में आना तो संभव नहीं ?''

''क्यों नहीं ? वे भी तो आदमी हैं। कठिन है, पर इतनी नहीं कि आदमी की भी समझ में न आये। भगवान तो कहते हैं कि प्रत्येक सैनी पंचेन्द्रिय को आत्मज्ञान हो सकता है, चाहे वह किसी भी गति में क्यों न हो ?

मेरी समझ में न आवेगी—ऐसा मानकर किसी को भी इससे उदास नहीं होना चाहिये। अनंत दु:खों को मेटनेवाली, संसार-सागर से पार उतारनेवाली बात तो एकमात्र आत्मा की ही बात है।

यद्यपि प्रत्येक गृहस्थ का जीवन पूर्ण सदाचारमय होना चाहिये तथापि समस्त सदाचार की शोभा आत्मज्ञान से है, आत्मश्रद्धान से है, आत्मानुभूति से है।''

''और सम्यक्चारित्र ?''

''सम्यक्चारित्र तो साक्षात् धर्म है, मुक्ति का साक्षात्कारण है; किंतु वह सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान के बिना नहीं होता।''

''शुद्धभाव तो इस जमाने में होता नहीं और शुभभाव आप छुड़ाते हैं, तो क्या अशुभभाव में रहना?''

''कौन कहता है कि शुद्धभाव इस समय में नहीं होता? साक्षात् धर्म तो वीतरागभावरूप शुद्धभाव ही है। शुद्धभाव नहीं होने का अर्थ यह है कि इस युग में धर्म नहीं होता, जबकि शास्त्रों में स्पष्ट लिखा है कि शुद्धभावरूप चारित्रधर्म का सद्भाव तो पंचम काल के अंत तक रहेगा।

और यह भी कौन कहता है कि हम शुभभाव छुड़ाते हैं? हम तो शुभभाव को धर्म मानना छुड़ाते हैं। रागरूप होने से वह धर्म है भी नहीं। क्योंकि धर्म तो वीतरागस्वरूप है।

शुभराग की सत्ता तो भूमिकानुसार मुनिराज के भी होती है, किंतु शुभराग को धर्म सम्यग्दृष्टि ज्ञानी भी नहीं मानता। शुभराग का होना चारित्र की कमजोरी है, जबकि शुभराग को धर्म मानना मिथ्यात्व नामक महापाप।

शुभभाव को धर्म मानना छुड़ाकर आचार्यदेव मिथ्यात्व नामक महापाप को छुड़ाते हैं, शुभभाव को नहीं।''

''तो शुभभाव तो करना चाहिये न?''

''चाहिये का प्रश्न कहाँ उठता है? ज्ञानी धर्मात्मा को भूमिकानुसार शुभभाव आता ही है, किंतु वह उसे धर्म नहीं मानता।

शास्त्रों में भी जहाँ कहीं शुभभाव को व्यवहार से धर्म कहा है वह कथन उपचरित कथन है। वास्तविक (निश्चय) धर्म तो शुभाशुभभाव के अभावरूप शुद्धभाव ही है।''

''शुभ को छोड़कर अशुभ में जाना तो अच्छा नहीं?''

''बिल्कुल नहीं, पर जिसप्रकार शुभ को छोड़कर अशुभ में जाना अच्छा नहीं; उसीप्रकार शुभ को धर्म मानना भी अच्छा नहीं। इस ओर भी ध्यान दिया जाना चाहिये।''

प्रतिष्ठा में प्राप्त प्रतिमाओं पर अंकन्यास-विधि संपन्न करने जाने के लिये उनका समय हो गया था। अतः ''अभी और समय नहीं है, कुछ पूछना हो तो फिर कभी पूछना''—

यह कहकर जब वे जाने लगे तो मैं भी उन्हें सविनय नमस्कार कर चल दिया। ●●

'तं सुद्धणयं वियाणीहि'

परमपूज्य आचार्य कुन्दकुन्द के ग्रंथराज समयसार की चौदहवीं गाथा पर पूज्य कानजीस्वामी के प्रवचनों का सार यहाँ दिया जा रहा है। मूल गाथा इसप्रकार है—

जो पस्सदि अप्पाणं, अबद्धपुट्ठं अणण्णयं णियदं।
अविसेसमसंजुत्तं तं सुद्धणयं वियाणीहि॥१४॥

जो नय आत्मा को अबद्धस्पृष्ट, अनन्य, नियत, अविशेष और असंयुक्त देखता है; उसे शुद्धनय जानो। (गतांक का शेष)

अविशेष :- जैसे सुवर्ण को चिकनापन, पीलापन, भारीपन आदि गुणरूप भेदों से अनुभव करने पर विशेषत्व भूतार्थ है, सत्यार्थ है; तथापि जिसमें सर्व भेद गौण हो गये हैं ऐसे एकाकार स्वर्णस्वभाव का एकरूप अखण्ड सामान्य स्वभाव देखने पर उसमें अलग-अलग गुणभेद ज्ञात नहीं होते। सोना खरीदनेवाला स्वर्णकार मात्र सोने का वजन करके सोने का ही मूल्य चुकाता है—उसकी कारीगरी का मूल्य नहीं चुकाता, वह सोने के आकार-प्रकार और उसकी रचना-कला को मुख्य न करके मात्र सोने पर ही वजन देता है, उसकी दृष्टि अखंड स्वर्ण पर ही है; इसलिये वह मात्र यही देखता है कि सोना कितने टंच का है, सुवर्ण भेद पर उसका लक्ष्य नहीं होता।

इसीप्रकार आत्मा में दृष्टि डालने पर पर्याय की ओर के विचार छोड़कर गुण-गुणी के भेदरूप रागमिश्रित विचार को भी छोड़ देता है। मैं ज्ञान-दर्शनवाला हूँ, चारित्रवान हूँ—ऐसे विकल्परूप-भेद करके यदि विभिन्न गुणों के विचार में लग जाए तो अखंड स्वभाव के लक्ष्यपूर्वक निर्विकल्प स्वानुभव नहीं होता। यद्यपि वस्तु में अनेक गुण हैं, उसे पहचानने के लिये उसका विचार करने पर अनेक भेदरूप विकल्प होते हैं; तथापि उस भेददृष्टि को शिथिल करके एकरूप सामान्य ध्रुवस्वभाव को दृष्टि में लेने से ही सम्यग्दर्शन होता है।

जिसप्रकार सोने में अनेक गुण हैं किंतु उसके संपूर्ण स्वभाव का लक्ष्य करने के लिये

विभिन्न गुणों के भेद का विचार छोड़ना पड़ता है; उसीप्रकार अखंड आत्मा का लक्ष्य करने के लिये भेददृष्टि को गौण करना पड़ता है। ज्ञान, दर्शन, आनंद आदि गुणों का भेद करके रागमिश्रित विचार करने पर रागदशा का नाश नहीं होता। मैं ज्ञान हूँ, शुद्ध हूँ, पूर्ण हूँ—ऐसे विकल्प भी स्थूल हैं; व्यवहारनय के विषय हैं।

जैसे सोने में सभी गुण एक साथ हैं, उसीप्रकार आत्मा में अनंत गुण एक साथ अखंड रूप से प्रति समय विद्यमान हैं, उनमें रागमिश्रित विचार द्वारा भेद करना पर्यायदृष्टि है। रागरूप विषय का लक्ष्य छोड़कर, गुण-भेदरूप विकल्पों से रहित आत्मस्वभाव के निकट जाकर देखने पर स्वरूप में विकल्प-भेद का अवकाश ही नहीं है। अखंड सामान्य स्वभाव पर भार देकर एकत्व का निश्चय करना सम्यग्दर्शन है। स्वभाव के लक्ष्य से निर्मल श्रद्धा-ज्ञान और आंशिक आनंदरूप चारित्र प्रगट होता है।

सामान्य लक्ष्य में भेद गौण हो जाता है, इसलिये पर का विश्वास और भेददृष्टि को छोड़कर एकरूप सामान्य स्वभाव में एकाग्र होकर देखने से उसमें अभूतार्थ भेद-विकल्प का अभाव प्रतीत होगा। स्थिर एकाकार स्वानुभव के समय भेद-विचार नहीं होता। मैं आनंद स्वरूप का वेदन करता हूँ, मैं अपने को जानता हूँ, इत्यादि विकल्पों का आत्मस्वभाव में प्रवेश नहीं है। इसप्रकार क्षणिक भेद अभूतार्थ है। रागनाशक आत्मा स्वयं रागरहित है।

असंयुक्त :- जैसे जल का अग्नि जिसका निमित्त है ऐसी उष्णता के साथ संयुक्त अवस्थारूप अनुभव करना भूतार्थ है, तथापि एकांत शीतलतारूप जल स्वभाव के समीप जाकर अनुभव करने पर उष्णता के साथ संयुक्तता अभूतार्थ है। उसीप्रकार कर्मनिमित्तक मोहयुक्त अवस्था में आत्मा का अनुभव करने पर संयुक्तता भूतार्थ है—सत्यार्थ है, तथापि जो स्वयं एकांत बोधरूप है, ऐसे जीवस्वभाव के सम्मुख जाकर अनुभव करने पर संयुक्तता अभूतार्थ है, असत्यार्थ है।

पानी का स्वभाव शीतल है, किंतु वर्तमान अवस्था में अग्नि के निमित्त से पानी में उष्णता है; तथापि एकांत शीतल जल स्वभाव के लक्ष्य से देखने पर पानी वास्तव में स्वभावतः उष्ण नहीं हुआ है, मात्र उसकी अवस्था में उष्णता है, उस समय भी स्वभाव तो शीतल ही है। यदि पानी स्वभाव से ही उष्ण हो गया तो वह फिर ठंडा नहीं हो सकेगा। लाखों वर्ष से उष्ण

हुआ पानी चाहे जब अग्नि पर डाला जाए तो वह जिस अग्नि से उष्ण हुआ था, उसी को ठंडा कर देता है। पानी में अग्नि को बुझाने की और ठंडा रहने की शक्ति त्रिकाल है। उष्ण अवस्था के समय भी शीतल स्वभाव पर दृष्टि करे तो यह निश्चय करना कठिन नहीं है कि इस पानी को ठंडा कर देने से वह तृषा को मिटा देनेयोग्य हो जायेगा। पानी का उष्णतानाशक स्वभाव देखने पर स्पष्ट ज्ञात होता है कि पानी की उष्णता अभूतार्थ है—असत्यार्थ है।

इसीप्रकार आत्मा भी देह से भिन्न, शांत और पूर्णानंदघनस्वभावी है, उसको कर्मनिमित्तक, मोहसंयुक्त अवस्थारूप से अनुभव करने पर संयुक्तता भूतार्थ ज्ञात होती है। जीव में कर्म के निमित्त से विकारी अवस्थारूप होने की योग्यता है, किंतु स्वभाव में विकार नहीं है। विकारी अवस्था का अनुभव करने पर अभूतार्थ राग-द्वेष का भाव होता है, वह भगवान आत्मा का स्वभाव नहीं है। वर्तमान एक-एक समय की पर्याय में संयोग और विकार के होते हुए भी असंयोगी अविकारी त्रिकाल स्थायी शुद्ध चिदानंदस्वरूप स्वभाव विकार का नाशक है। विकल्प से हटकर चैतन्यस्वभाव के समीप जाकर अंतर्दृष्टि से देखा जाए तो निमित्ताधीन विकार अभूतार्थ है।

जैसे पानी में शीतलता भरी हुई है, उसीप्रकार तुझमें शाश्वत सुख भरा हुआ है। जैसे पानी मलिनता का नाशक है, उसीप्रकार तू राग-द्वेष-मोह का नाशक है। जैसे पानी में मीठा स्वाद है, उसीप्रकार तुझमें अनुपम अनंत आनंदरस भरा है। इसप्रकार अपने निजस्वभाव की ओर दृष्टि कर। जैसे कच्चे चने में अप्रगट मिठास भरी है, जो कि चने के भुंजने पर प्रगट अनुभव में आ जाती है; उसीप्रकार आत्मा में अतीन्द्रिय गुणों की अनंत मिठास भरी है, जो कि स्वभाव की प्रतीति और एकाग्रता से प्रगट अनुभव में आ जाती है।

एकांत बोधरूप स्वभाव का अर्थ है—सम्यग्दर्शन का कारणरूप स्वभाव। एकांत स्वभाव अर्थात् परनिमित्त के भेद से रहित स्वाश्रितरूप से नित्य स्थायी ज्ञानस्वभाव। इसप्रकार धर्मस्वरूप स्वभाव की श्रद्धा करानेवाला बोध सम्यग्दर्शन है।

आत्मा पाँच प्रकार से अनेक रूप दिखायी देता है—

१. अनादि से पुद्गलकर्म का संयोग होने से कर्मपुद्गल से स्पर्शवाला दिखायी देता है।

२. कर्म के निमित्त से होनेवाली नर-नारकादि पर्यायों में अनेकरूप दिखायी देता है।

३. अनंत गुणों की अवस्था में होनेवाली हीनाधिकता से अनियतरूप दिखायी देता है।

४. दर्शन, ज्ञान आदि अनेक गुणों से विशेषरूप दिखायी देता है।

५. कर्म के निमित्त से होनेवाले राग-द्वेष, सुख-दुःखरूप दिखायी देता है।

यह सब अशुद्ध द्रव्यार्थिकरूप व्यवहारनय का विषय है, इस दृष्टि से देखा जाये तो यह सब सत्यार्थ है; परंतु आत्मा का एक स्वभाव इस नय से ज्ञात नहीं होता और एक स्वभाव को जाने बिना यथार्थ आत्मा को कैसे जाना जा सकता है ? जितना परनिमित्त से अनेक भेदरूप दिखायी दे उतना ही अपने को मान ले तो यथार्थ स्वरूप ज्ञात नहीं होता।

निमित्ताधीन अशुद्धदृष्टि का पक्ष छोड़कर, विकारी अवस्था तथा निमित्त के संयोग को यथावत् जाननेवाले व्यवहारनय को गौण करके—शुद्ध द्रव्यार्थिकनय की दृष्टि से एक असाधारण ज्ञायकमात्र आत्मा सर्व परद्रव्यों से भिन्न, सर्व पर्यायों में एकाकार, हानिवृद्धि से रहित, विशेषों से रहित और नैमित्तिक भावों से रहित देखा जाय तो समस्त परद्रव्य और परभवों के अनेक भेदों से युक्त अवस्था का स्वभाव में अभाव होने से वह अभूतार्थ है, असत्यार्थ है।

यहाँ यह समझना चाहिये कि वस्तु का स्वरूप अनंत धर्मात्मक है। सर्वज्ञकथित स्याद्वाद से वस्तु का अनंत धर्मात्मक स्वरूप निश्चित होता है। स्वतंत्र वस्तु के अनेक धर्मों में से जिस अपेक्षा से जो स्वभाव है, उसे मुख्य करके कहना स्याद्वाद है। प्रत्येक वस्तु अपनेपन से त्रिकाल है और पररूप से एकसमयमात्र को भी नहीं है। इसप्रकार अस्ति-नास्ति से वस्तु के निश्चयस्वरूप को जानना स्याद्वाद की सच्ची श्रद्धा है। आत्मा कभी पर की क्रिया करे और कभी न करे ऐसा विपरीतवाद, विचित्रवाद सर्वज्ञ-शासन में नहीं है।

आत्मा में अनंत धर्म हैं, उनमें से कुछ धर्म तो स्वाभाविक हैं, वे पर-निमित्त की अपेक्षा नहीं रखते। जैसे ज्ञान, दर्शन, आनंद, वीर्य, अस्तित्वादि परनिमित्त से नहीं, किंतु स्वयंसिद्ध हैं। कुछ धर्म पुद्गल के संयोग से होते हैं, उनसे आत्मा की सांसारिक प्रवृत्ति होती है और वह तत्संबंधी सुख दुःखादि को भोगता है। यह आत्मा की अनादिकालीन अज्ञानमय पर्यायबुद्धि है, जिसमें अनादि अनंत एक आत्मा का ज्ञान नहीं होता।

सर्वज्ञ के आगम में शुद्ध द्रव्यार्थिकनय से कहे गये अखंड, नित्य, अनादिनिधन, असाधारण चैतन्यभाव को जानने से पर्यायबुद्धि का पक्षपात मिट जाता है। जब आत्मा

परद्रव्यों, परभावों और परनिमित्तक अपने विभावों से भिन्न आत्म-स्वभाव को जानकर उसका अनुभव करता है, तब परद्रव्य के भावोंस्वरूप परिणमित नहीं होता; अत: कर्मबंध भी नहीं होता और संसार से निवृत्ति हो जाती है।

इसलिये पर्यायार्थिकरूप व्यवहारनय को गौण करके अभूतार्थ कहा है और शुद्धनिश्चयनय को सत्यार्थ कह कर उसका आलंबन लिया है। वस्तुस्वरूप की प्राप्ति होने के बाद उसका भी आलंबन नहीं रहता अर्थात् यथार्थ वस्तुस्वरूप का अनुभव होने पर नयपक्ष के विकल्प का अवलंबन नहीं रहता। वर्तमान में पूर्णता का नि:संदेह विश्वास होने से स्वरूप के निर्णय संबंधी शंका नहीं रहती और चारित्र में पूर्णता होने के बाद केवलज्ञान में सूक्ष्म राग या विकल्प का आलंबन नहीं होता।

शुद्धनय को सत्यार्थ कहा है—इसलिये अशुद्धनय को सर्वथा असत्यार्थ नहीं समझना चाहिये।

अशुद्धनय को सर्वथा असत्यार्थ मानने से संसार को सर्वथा अवस्तु माननेवाले सर्वथा एकांत पक्षरूप वेदांतमत के समान मिथ्यात्व आ जायेगा।

वर्तमान अवस्था है, निमित्त है, उसका निषेध नहीं किया; किंतु अपनी अवस्था और बाह्य निमित्त जैसे हैं, उन्हें वैसा जानना व्यवहारनय है।

इसलिये स्याद्वाद को समझकर जिनमत का सेवन करना चाहिये। मुख्य गौण कथन को सुनकर सर्वथा एकांत पक्ष को नहीं पकड़ना चाहिये। टीकाकार आचार्यदेव ने बद्धस्पृष्टादि भावों को व्यवहार से सत्यार्थ और शुद्धनय की दृष्टि से असत्यार्थ कहकर स्याद्वाद बताया है।

नय, श्रुतज्ञान-प्रमाण का अंश है। श्रुतज्ञान वस्तु को परोक्ष बतलाता है, इसलिये नय भी परोक्ष ही बतलाता है। बिलकुल स्पष्ट और पूर्ण प्रत्यक्ष ज्ञान तो तेरहवें गुणस्थान में होता है। जैसी श्रद्धा केवलज्ञानी को है वैसी ही श्रद्धा सम्यग्दृष्टि को है, मात्र अपूर्ण ज्ञान के कारण परोक्ष है; फिर भी अनुभव की अपेक्षा से केवली के समान ही अंशत: साक्षात् आनंद का स्वाद लेता है। जैसे कोई अंध पुरुष मिश्री खाता है तो उसे भी चक्षुमान पुरुष के समान ही मिश्री का स्वाद आता है। अंतर मात्र इतना ही है कि अंध पुरुष मिश्री को प्रत्यक्ष देख नहीं सकता। इसीप्रकार

सम्यग्ज्ञानी और पूर्णज्ञानी दोनों को आत्मा का अनुभव होता है किंतु निम्न दशा में सम्यग्ज्ञानी को प्रत्यक्ष ज्ञान नहीं होता।

शुद्धद्रव्यार्थिकनय का विषयभूत बद्धस्पृष्टादि पाँच भावों से रहित आत्मा चैतन्यशक्ति मात्र है। वह शक्ति तो आत्मा में परोक्ष ही है, और उसकी व्यक्ति कर्मसंयोग से मतिश्रुतादि ज्ञानरूप है, वह कथंचित् अनुभव गोचर होने से प्रत्यक्षरूप भी कहलाती है और यद्यपि छद्मस्थ को केवलज्ञान नहीं है तथापि शुद्धनय आत्मा के केवलज्ञानरूप को परोक्ष बताता है।

जब तक जीव शुद्धनय के द्वारा पूर्णज्ञानघन, पर से भिन्न आत्मा को नहीं जानता तब तक रागरूप विकल्प से छूटकर निर्विकल्प पवित्र आत्मा के पूर्णरूप का ज्ञान-श्रद्धान नहीं होता। इसलिये श्री गुरु ने शुद्धनय को प्रगट करने का उपदेश दिया है कि बद्धस्पृष्टादि पाँच भावों से रहित पूर्णज्ञानघन स्वभाव आत्मा को जानकर श्रद्धान करना चाहिये, पर्यायबुद्धि नहीं रहना चाहिये।

यहाँ कोई ऐसा प्रश्न करे कि बद्धस्पृष्टादि भावों से भिन्न आत्मा प्रत्यक्ष तो दिखायी नहीं देता और बिना देखे श्रद्धान करना असत् श्रद्धान है, फिर आत्मा की श्रद्धा कैसे हो ?

उत्तर :- मात्र देखे हुए का ही श्रद्धान करना तो नास्तिक मत है। जिसप्रकार सात पीढ़ी पूर्व हुए अपने पूर्वजों को हमने नहीं देखा फिर भी अनुमान से सिद्ध होता है कि सातवीं पीढ़ी अवश्य थी; उसीप्रकार शुद्धनय के द्वारा आत्मा की श्रद्धा होती है।

जैनशासन में प्रत्यक्ष और परोक्ष दोनों ज्ञान प्रमाण माने गये हैं। परोक्ष ज्ञान में आगम प्रमाण भी है, उसका भेद शुद्धनय है, उस शुद्धनय की दृष्टि से शुद्ध आत्मा का श्रद्धान करना चाहिये।

शास्त्र द्वारा आत्मा को जानकर अंतरंग दृष्टि से अनुमान प्रमाण करना चाहिये कि मैं बद्धस्पृष्टादि भावों से भिन्न अभेद अखंड चैतन्यस्वभावी शुद्ध आत्मा हूँ। इसप्रकार अपने पूर्ण सर्वज्ञस्वभाव को परोक्षज्ञान द्वारा जाना जा सकता है और उसकी श्रद्धा की जा सकती है।

वह मुक्तिसुंदरी का नाथ होता है

परमपूज्य आचार्य कुन्दकुन्द के ग्रंथराज 'नियमसार' की पद्मप्रभमलधारिदेव कृत 'तात्पर्यवृत्ति' नामक टीका के बीच-बीच में अनेक महत्त्वपूर्ण छंद आये हैं।

दशवीं, ग्यारहवीं तथा बारहवीं गाथा की टीका में समागत छंद नं० १७ से २२ तक के छंदों पर हुए पूज्य कानजीस्वामी के प्रवचनों का सार अति संक्षेप में यहाँ दिया जा रहा है।

अथ सकलजिनोक्तज्ञानभेदं प्रबुद्ध्वा
परिहृतपरभावः स्वस्वरूपे स्थितो यः।
सपदि विशति यत्तच्चिच्चमत्कारमात्रं
स भवति परमश्रीकामिनीकामरूपः ॥१७॥

जिनेन्द्रकथित समस्त ज्ञान के भेदों को जानकर जो पुरुष परभावों का परिहार करके निजस्वरूप में स्थिर रहता हुआ शीघ्र चैतन्यचमत्कारमात्र तत्त्व में प्रवेश कर जाता है, वह पुरुष परम श्रीरूपी कामिनी का वल्लभ होता है अर्थात् मुक्तिसुंदरी का नाथ होता है।

भगवान परमेश्वर निजज्ञानानंद से भरपूर है; ऐसे आत्मा में पर्याय को अंतर्मुख करके जो एकाग्र करता है, वह जीव मुक्ति प्राप्त करता है। जिसका उपयोग बाहर में भ्रमण करता था उसके बदले शीघ्र चैतन्यचमत्कारमात्र आत्मा में अंतर्मुख होकर स्वभाव में डुबकी मारता है, वह जीव मुक्ति प्राप्त करता है।

इसप्रकार उपयोगों के प्रकारों का वर्णन करके उसका फल भी बतलाया है।

इन उपयोग के भेदों को जानकर क्या करना? परभावों को छोड़कर निजचैतन्य-चमत्कार स्वभाव में शीघ्र प्रवेश करना। यहाँ परभाव को छोड़ने के लिये कहा, वह व्यवहार से है। वास्तव में तो चैतन्य में स्थित होने पर परभाव सहज ही छूट जाते हैं। ऐसा जानकर चैतन्यचमत्कार स्वभाव में गहरा उतर कर जो जीव उसकी श्रद्धा-ज्ञान और एकाग्रता करता है, वह मुक्तिसुंरी का पति होता है।

इति निगदितभेदज्ञानमासाद्य भव्यः
परिहरतु समस्तं घोरसंसारमूलम्।
सुकृतमसुकृतं वा दुःखमुच्चैः सुखं वा,
तत उपरि समग्रं शाश्वतं शं प्रयाति ॥१८॥

इसप्रकार कहे गये भेदज्ञान को पाकर भव्य जीव घोर संसार के मूलरूप समस्त सुकृत या दुष्कृत को, सुख या दुख को अत्यंत परिहरो। उससे ऊपर (अर्थात् उसे पार कर लेने पर) जीव समग्र शाश्वत सुख को प्राप्त करता है।

उपयोगमय जीव है, उस उपयोग का वर्णन करके जीव की पहचान करवायी। इसप्रकार भेदज्ञान करके घोर संसार के मूलरूप समस्त पुण्य-पाप का भव्य जीव परिहार करो और त्रिकाली शुद्ध चैतन्य का ही अवलंबन करो। शुभव्यवहार धर्म का कारण नहीं, अपितु घोर संसार का कारण है। व्यवहाररत्नत्रयरूप सुकृत अर्थात् शुभराग को भी घोर संसार का मूल कहा है, उसे अत्यंत परिहरो। और त्रिकाली कारण परमात्मा ज्ञानमूर्ति बतलाया उसकी भावना करो, क्योंकि वही संपूर्ण शाश्वत् सुख का उपाय है। शुभ तथा अशुभ दोनों का उल्लंघन करके निजपरमात्मा की भावना से ही शाश्वत् सुख प्राप्त होता है, इसके अतिरिक्त अन्य कोई उपाय नहीं। अखंड चैतन्य की ओर का लक्ष्य ही प्रारंभिक उपाय है और आगे बढ़कर भी वही मोक्ष का कारण है।

मोक्ष का मूल कौन? शुद्धउपयोग का पिंड, परिपूर्ण, अखंड आत्मा ही मोक्ष का मूल है। इसके अतिरिक्त शुभ-अशुभ भाव संसार के ही मूल हैं—मोक्ष के नहीं।

परिग्रहाग्रहं मुक्त्वा कृत्वोपेक्षां च विग्रहे।
निर्व्यग्रप्रायचिन्मात्रविग्रहं भावयेद् बुधः ॥१९॥

परिग्रह का ग्रहण छोड़कर तथा शरीर के प्रति उपेक्षा करके बुध पुरुष अव्यग्रता से (निराकुलता से) परिपूर्ण चैतन्यमात्र जिसका शरीर है, ऐसे आत्मा की भावना करो।

उपयोगमय आत्मा कहा, उसकी पकड़ करते ही पर की पकड़ छूट जाती है, अतः चैतन्य के अतिरिक्त समस्त परद्रव्यों का ग्रहण छोड़कर तथैव शरीर के प्रति भी उपेक्षा करके अर्थात् उसका भी लक्ष्य छोड़कर ज्ञानियों को अव्यग्रता से भरपूर चैतन्यमात्र की भावना करनी चाहिये।

बाहर में शरीरादि का क्या होगा ? ऐसी व्यग्रता करना आत्मा का स्वरूप नहीं है, यह शरीर आत्मा का नहीं है। आत्मा का तो चिन्मात्र विग्रह अर्थात् चैतन्यमात्र शरीर है, ऐसे आत्मा की भावना करना। शरीर का कल क्या होगा ? ऐसी चिंता वह व्यग्रता है। व्यग्रता करना चैतन्य का स्वरूप नहीं है तथा व्यग्रता करने से पर में कोई फेरफार भी नहीं हो सकता, अत: व्यग्रता से रहित जो चिदानंदपूर्ण भगवान है उसी की भावना करना चाहिये।

मुख्यरूप से यह मुनि की बात है। इसीलिये कहा है कि बाह्य में परिग्रह छोड़कर तथा देह की भी उपेक्षा करके शुद्ध ज्ञानशरीरी चैतन्य आत्मा की भावना करो। इस भावना में ही निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीनों आ जाते हैं।

भेदज्ञान से चैतन्य की भावना करने पर क्या फल होता है, वह बतलाकर उसकी महिमा और मंगल करते हैं।

शस्ताशस्तसमस्तरागविलयान्मोहस्य निर्मूलनाद्
द्वेषारंभ: परिपूर्णमानसघटप्रध्वंसनात् पावनम्।
ज्ञानज्योतिरनुत्तमं निरुपधि प्रव्यक्ति नित्योदितं
भेदज्ञानमहीजसत्फलमिदं वन्द्यं जगन्मंगलम्॥२०॥

मोह को निर्मल करने से, प्रशस्त-अप्रशस्त समस्त राग का विलय करने से, तथा द्वेषरूपी जल से भरे हुए मनरूपी घड़े का नाश करने से—पवित्र, अनुत्तम, निरुपधि और नित्य उदित (सदा प्रकाशमान) ऐसी ज्ञानज्योति प्रकट होती है। भेदज्ञानरूपी वृक्ष का यह सत्फल वन्द्य है, जगत को मंगलरूप है।

चैतन्य की भावना से मोह का नाश हो जाता है तथा समस्त शुभाशुभ राग का नाश हो जाता है। स्वभाव की ओर वर्तनेवाली अरुचि को द्वेषरूपी जल से भरा हुआ घड़ा कहा है उसका भी चैतन्य की भावना से नाश हो जाता है। इसप्रकार त्रिकाली शुद्ध चैतन्यमूर्ति स्वभाव की भावना करने से, मोह और राग-द्वेष का नाश करने से—पवित्र, अनुत्तम, उपाधि रहित और नित्यप्रकाशमान ऐसी ज्ञानज्योति प्रकट होती है।

ऐसी ज्ञानज्योति प्रकट हुई, वह भेदज्ञानरूपी वृक्ष का सुंदर फल है। भेदज्ञानरूपी वृक्ष का यह सत्फल वंद्य है तथा जगत को मंगलरूप है। देखो, अखंड ज्ञानज्योति प्रकट होने का

कारण पर से भिन्नत्व की भावना है। पर से भिन्न आत्मा का भेदज्ञान करने पर मोक्ष का बीजारोपण हो जाता है; पश्चात् उसमें से वृक्ष फलित होने पर केवलज्ञानरूपी फल प्रकट होता है—वह सत्फल जगत में वंद्य है और वही मंगलरूप है। वही संपदादायक एवं आपदाविनाशक मंगल है।

मोक्षे मोक्षे जयति सहजज्ञानमानन्दतानं
निर्व्याबाधं स्फुटितसहजावस्थमन्तमखं च।
लीनं स्वस्मिन्सहजविलसच्चिच्चमत्कारमात्रे
स्वस्य ज्योतिः प्रतिहततमोवृत्ति नित्याभिरामम् ॥२१॥

आनंद में जिसका विस्तार है, जो अव्याबाध (बाधारहित) है, जिसकी सहज अवस्था विकसित हो गयी है, जो अंतर्मुख है, जो स्वयं में—सहज विलसते हुए (खेलते हुए परिणमते हुए) चित्चमत्कारमात्र में लीन है, जिसने निजज्योति से तमोवृत्ति को (अंधकारदशा को, अंधकार परिणति को) नष्ट कर दिया है, और जो नित्य अभिराम (सदा सुंदर) है—ऐसा सहजज्ञान संपूर्ण मोक्ष में जयवंत वर्तता है।

टीकाकार कहते हैं कि सहजज्ञान से प्रकट हुई स्वाभाविकदशा मोक्ष में जयवंत वर्तती है। कैसा है वह सहजज्ञान? आनंद में उसका फैलाव है, संपूर्ण राग-द्वेष-मोह नष्ट होकर संपूर्ण आनंद प्रकट हो गया है; जो अव्याबाध है, जिसको अब कोई बाधा नहीं है; जिसकी सहज अवस्था विकसित हो गयी है, शक्तिरूप से जो त्रिकाली कारणस्वभावज्ञान था उसमें से ही सहज अवस्था विकसित हुई है अर्थात् केवलज्ञान हुआ है; फिर वह अंतर्मुख है, अपने सहज विलसते (परिणमते) चैतन्य चमत्कार में लीन है; तथा अपनी ज्योति प्रकट हुई उससे अज्ञान अंधकार का नाश किया है; और जो नित्य अभिराय (सदा सुंदर) है—ऐसा सहज ज्ञान अपनी प्रकटी हुई अवस्था सहित मोक्ष में जयवंत वर्तता है।

त्रिकाली सहजज्ञान था, उसकी पूर्ण अवस्था मोक्ष में विकसित हो गयी है ऐसा ज्ञान मोक्ष में जयवंत वर्तता है। ऐसे सहजज्ञान स्वभाव की भावना करने जैसी है। उसकी भावना से केवलज्ञान और मोक्षदशा प्रकट हो जाती है।

सहजज्ञानसाम्राज्यसर्वस्वं शुद्धचिन्मयम्।
ममात्मानमयं ज्ञात्वा निर्विकल्पो भवाम्यहम्॥२२॥

सहजज्ञानरूपी साम्राज्य जिसका सर्वस्व है, ऐसे शुद्ध चैतन्यमय अपने आत्मा को जानकर, मैं यह निर्विकल्प होऊँ।

निर्विकल्प कैसे हो? कि सहजज्ञानरूपी साम्राज्य ही जिसका सर्वस्व है, ऐसे शुद्ध चैतन्यमय अपने आत्मा को जानकर उसमें लीनता होने पर निर्विकल्पता होती है। इस भाँति सहजज्ञानमय शुद्धात्मा को जानने से निर्विकल्पता होती है—ऐसा कहा।

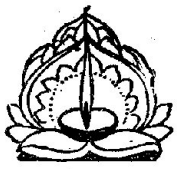

जब अलग होना होता है

जब देवरानी-जिठानी को अलग होना होता है तो पहले वे एक-दूसरे की बुराई करने लगती हैं। यह उनके अलग होने का लक्षण है। इसीप्रकार ज्ञान में राग के प्रति तीव्र अनादर भाव जागृत होना ज्ञान और राग के बीच भेदज्ञान होने का लक्षण है। आत्मा में राग की गंध भी नहीं है। राग के जितने भी विकल्प उठते हैं; उनमें जलन है, दु:ख है, जहर है—ज्ञान में ऐसा निर्णय करने से भेदज्ञान प्रगट होता है।

— पूज्य श्री कानजीस्वामी

द्रव्यसंग्रह प्रवचन

वृहद्द्रव्यसंग्रह पर पूज्य स्वामीजी के प्रवचन सन् १९५२ में हुए थे। जिज्ञासु पाठकों के लाभार्थ उन्हें यहाँ क्रमशः दिया जा रहा है।

[गतांक से आगे]

(५) वेदमार्गणा :- तीन प्रकार के वेद कहे, यह द्रव्यवेद की बात नहीं है। शरीर के अवयव तो जड़ हैं। अंदर के भाव की बात है। ऐसे वेद के उदय से जो रागादि दोष उत्पन्न होते हैं, वे पर्याय हैं, लेकिन परमात्मद्रव्य में नहीं हैं। द्रव्य तो त्रिकाल अवेदी भगवान है, उससे वेद के परिणाम भिन्न हैं।

स्त्रीवेद :- स्त्रीवेद के परिणाम कर्म के कारण या पर के कारण से नहीं हैं, जीव के स्वयं के कारण से हैं; तो भी द्रव्य से भिन्न हैं। जिस समय स्त्रीवेद पर्याय में है, उसी समय वह परिणाम स्वभाव में नहीं है; इसप्रकार दोनों का ज्ञान कराया है।

यह बात सर्वज्ञ के अतिरिक्त अन्यत्र कहीं भी नहीं है, सर्वज्ञपना एक ही प्रकार है। जैन के नाम से जो शाखा निकली है (श्वेतांबर मत) उसमें भी सर्वज्ञपना नहीं है। पूर्णज्ञानदर्शन दशा प्रगट हो इसका एक ही मार्ग है। इसलिये सत्यार्थ देव-गुरु-शास्त्र का निर्णय करना चाहिये। 'सत्तास्वरूप' में अनेक बोलों में महत्त्वपूर्ण वास्तविक रकम बतायी है। मूल रकम के निर्णय के बिना पेटा भेद का यथार्थ निर्णय नहीं हो सकता। इसलिये सच्चे देव-गुरु-शास्त्र के स्वरूप का यथार्थ निर्णय होना चाहिये।

श्लोकवार्तिककार विद्यानंदस्वामी कहते हैं कि सर्वज्ञ भगवान द्वारा कहा हुआ द्रव्य-गुण-पर्याय वगैरह का स्वरूप जिस प्रमाण से है, उससे विरुद्ध कोई जीव प्ररूपणा करे, तब स्वयं का श्रद्धा-ज्ञान रखकर उसका विरोध करने का विकल्प न उठे और मिथ्या प्ररूपणा की तलाक न दे वह मिथ्यादृष्टि है।

स्वयं के पिता को किसी के द्वारा गाली देने में आये तो पुत्र सहन नहीं कर सकता। उसीप्रकार सर्वज्ञ के विरुद्ध कहनेवाली बात को धर्मी जीव सहन नहीं कर सकता, और यह प्ररूपणा असत्य है ऐसा विकल्प आये बिना रहता नहीं है। जो ऐसा विकल्प न आये तो वह

मिथ्यादृष्टि है। किसी को भाषा का योग न हो और वचन द्वारा विरोध न करे तो यह बात पृथक् है; लेकिन भाव में असत्य का विरोध आये बगैर नहीं रहता, अन्यथा सर्वज्ञ का अनादर हो जाता है। इसलिये जीव को सत्य का यथार्थ निर्णय करना चाहिये।

पुरुषवेद :- द्रव्यवेद की बात नहीं है, लेकिन अंदर में विकार होता है, वह जीव की पर्याय है, वह अशुद्धता जीव के कारण से है। पुरुषवेद का काल था वह तेरे स्वयं से है, ऐसा स्वीकार करे; उसी क्षण 'अखंडानंद ध्रुव हूँ' ऐसी दृष्टि की स्वीकृति पर्याय का ज्ञान कराती है। अज्ञानी जीव कहते हैं कि हमारे भाव करने के नहीं हैं, लेकिन पूर्व के कर्म एकसाथ उदय में आये इसलिये ऐसे भाव होते हैं। लेकिन यह बात बिल्कुल गलत है। वेद के परिणाम पर्याय में व्यक्त हैं। जो व्यक्त है, उसकी स्वतंत्रता नहीं भासती है—उसको अव्यक्त शुद्धद्रव्य स्वतंत्र है ऐसा भान नहीं हो सकता। वेद की पर्याय होने पर भी सारी वस्तु ऐसी नहीं हुई है—ऐसा ज्ञान कराया है।

नपुंसकवेद :- स्त्री और पुरुष दोनों के साथ रमण करने का भाव वह नपुंसकवेद है। वह कर्म के कारण से नहीं है, वह विभाव जीव के कारण से होता है। उसी समय त्रिकाली भगवान अव्यक्त अवेदी अंदर विराजता है, ऐसी श्रद्धा करने के लिये यह बात कही है। इसप्रकार वेदमार्गणा हुई। यहाँ द्रव्यसंग्रह में यह बात भावमार्गणा की है, इसलिये उसको अशुद्धनय का विषय कहा है।

(६) कषायमार्गणा :- भगवान आत्मा तो कषाय से रहित है, स्वभाव तो शुद्ध है, तब फिर कषाय कहाँ से आयी ? स्वयं ने पर्याय में की, इसलिये शुद्ध आत्मा के स्वभाव से प्रतिकूल क्रोध, मान, माया, लोभ है। जीव स्वयं के अकषायीस्वभाव को भूलता है तब पर्याय में ऐसे परिणाम होते हैं, उन्हें विस्तार से कहते हैं।

आत्मा ज्ञाता दृष्टा है। ऐसी श्रद्धारहित स्वरूप का आचरण भूलकर होनेवाले मिथ्या आचरण के परिणाम अनंतानुबंधी के परिणाम हैं। सत्यार्थ देव-गुरु-शास्त्र के प्रति अनादर के परिणमन को, सत्यार्थ देवादि की अपेक्षा कुदेवादि अथवा स्त्री कुटुंब के प्रति अधिक राग होने के परिणमन को अनंतानुबंधी कषाय कहते हैं। अनंतानुबंधी को तीव्र, अप्रत्याख्यान को मंद, प्रत्याख्यान को मंदतर, संज्वलन को मंदतम कषाय कहते हैं। उनमें क्रोध, मान, माया, लोभ ऐसे प्रत्येक के चार भेद होने से सोलह भेद होते हैं।

यह जीव की योग्यता के कारण से है, कर्म के कारण से नहीं है। हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, पुरुषवेद, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, ऐसी नौ प्रकार की नोकषाय के परिणाम जीव के कारण से हैं। इसप्रकार पच्चीस प्रकार से कषायमार्गणा है, वह परिणाम जीव के कारण से है। यह अशुद्धनय का विषय है। कषायें द्रव्य में नहीं हैं, कारण कि द्रव्य शुद्धनय का विषय है। यह बात सर्वज्ञ के अतिरिक्त अन्यत्र नहीं है। जो सर्वज्ञ की बात को अन्यमत के साथ समन्वय करने जाता है, वह मूढ़ है-मिथ्यादृष्टि है। दूसरों ने सर्वज्ञ के नाम से संप्रदाय चलाने के लिये बगैर बुद्धि के नकल की है। जो सुदेवादि कुदेवादि के बीच विवेक नहीं करता, और स्वयं का माना हुआ पथ नहीं छोड़ता, वह मिथ्यादृष्टि है। सर्वज्ञ भगवान जिसप्रकार द्रव्य-गुण-पर्याय का स्वरूप कहते हैं, उसप्रकार जाने तो पर्यायबुद्धि दूर होकर स्वभावबुद्धि होती है।

(७) ज्ञानमार्गणा :- इस संसार में अनंत आत्मायें हैं, प्रत्येक आत्मा त्रिकालशुद्ध है; इसप्रकार स्वयं भी शुद्ध है; ऐसा ज्ञान होने से सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान होता है। और सम्यग्ज्ञान होने से स्वयं की वर्तमान पर्याय ज्ञान-दर्शन इत्यादि की कौन-कौनसी होती है और दूसरे (जीव) कौन-कौन सी दशा में बरतते हैं;—यह मार्गणास्थान का जानपना (जानकारी) है। मार्गणास्थान सभी संसारी जीवों के होते हैं। किंतु उसका निर्णय साधकजीव अशुद्धनय से करता है। यहाँ दो नय की व्याख्या चलती है। आत्मा ज्ञानस्वभावी है, उसको निमित्त से अथवा विकार से धर्म नहीं होता; उसीप्रकार पर्याय के अवलंबन से भी नवीन शुद्धदशा प्रगट नहीं होती है। शुद्धदशा तो द्रव्य के आश्रय से होती है। 'मैं त्रिकाल शुद्ध हूँ'—ऐसा ज्ञान शुद्धनय से होता है और स्वयं की तथा जगत के जीवों की वर्तमान पर्याय जानना—यह अशुद्धनय का विषय है। यह केवली की बात नहीं है, उनको कुछ निर्णय करना नहीं रहता है, साधक इन गुणस्थानों का विचार करता है।

आत्मा द्रव्य है, उसका स्वभाव ज्ञान है। उसकी पाँच सम्यग्ज्ञान की और तीन मिथ्याज्ञान की ऐसी आठ पर्यायें हैं। प्रत्येक आत्मा का ज्ञानस्वभाव एकरूप शुद्ध है, उस ज्ञानगुण की आठ अवस्थायें हैं। मिथ्याज्ञान हो तब सम्यग्ज्ञान न हो, और सम्यग्ज्ञान हो तब मिथ्याज्ञान न हो। यहाँ सम्यग्ज्ञानी जीव त्रिकाली स्वभाव का निर्णय कर पर्याय का ज्ञान करता है। पर्याय अशुद्धनय का विषय है। केवलज्ञान के निर्णय की अपेक्षा तीन लोक के पदार्थों का

निर्णय होता है। दूसरे जड़ तथा चेतन पदार्थों का जिस काल में जैसा होना है वैसा होता है उसमें परिवर्तन नहीं होता है। इस जगत में तत्त्वों का महान मर्म है। केवलज्ञान—यह ज्ञान की पूर्णपर्याय है। आत्मा द्रव्य है, ज्ञान उसका परमस्वभाव है। यह ज्ञानगुण न हो तो स्व-पर को नहीं जाना जा सकता। इसलिये ज्ञानगुण सदृशध्रुव है और वह पूर्ण है।

उसकी वर्तमान पर्याय, साधकदशा में राग-द्वेष में रुकने (अटकने) से अल्पज्ञता भासित होती है। वह पर्याय का वास्तविक स्वरूप नहीं है। पर्याय का पूर्णस्वरूप जानना हो सकता है। इसप्रकार आत्मद्रव्य, ज्ञानगुण और उसकी जाननेरूप की पर्याय पूर्ण हो सकती है—ऐसा जिसने निश्चित किया वह जानता है कि जगत के पदार्थों का जिस काल में जैसा होना है, वैसा होता है, उसमें थोड़ा भी आगे-पीछे (फेरफार) नहीं होता है।

प्रश्न :- कोई यहाँ प्रश्न करता है कि फिर इसमें पुरुषार्थ कहाँ रहा?

समाधान :- इसमें ही पुरुषार्थ है। आत्मा ज्ञानस्वभावी है, और उसकी एक समय की पर्याय पूर्ण हो सकती है अर्थात् केवलज्ञान जगत में है। पूर्ण शक्ति में से पूर्ण कार्य प्रगट हुआ, ऐसा स्वीकार करनेवाले को राग-द्वेष, हर्ष-शोक, इत्यादि परिणाम हेयबुद्धि से होते हैं। जगत में अनंत केवली हैं, वे स्वयं के सामर्थ्य से केवलज्ञान को प्राप्त हुए हैं। इसप्रकार जो मानता है उसको दया-दानादि की रुचि दूर हो जाती है, विकल्प का आदर छूटता है, अल्पज्ञ पर्याय का लक्ष्य नहीं रहता है। अल्पज्ञ में अल्पज्ञ के आश्रय से सर्वज्ञ का निर्णय नहीं होता। मैं अल्पज्ञ हूँ, पूर्णपर्याय कहाँ से आयेगी? अल्पज्ञता का अभाव और सर्वज्ञता का उत्पाद कहाँ से होगा?

राग में से अथवा निमित्त में से होगा? नहीं, स्वयं में से होगा। ऐसा निर्णय करने से निमित्त की और पुण्य-पाप की रुचि दूर हो जाती है। अल्पज्ञता में से सर्वज्ञता प्रगट नहीं होती, ऐसा निर्णय करने से अल्पज्ञता की रुचि दूर हो जाती है। और सर्वज्ञता तो ज्ञानगुण ध्रुवसदृश है—उसमें से आती है, और वह ज्ञानगुण आत्मा का है। इसप्रकार ज्ञानस्वभावी आत्मा उपादेय मानी, और राग तथा अधूरी पर्याय को हेय मानी। अनंत जीवों ने केवल ज्ञान प्राप्त किया और प्राप्त करेंगे; वे स्वयं के आश्रय से केवलज्ञान को प्राप्त हुये—इसप्रकार मैं भी प्राप्त करूँगा—ऐसा निर्णय करनेवाला स्व में रहकर निर्णय करता है। कारण कि वह पर्याय ज्ञानगुण में से प्रगट होती है, और उस ज्ञानगुण का धारक आत्मा है। इससे आत्मा की ओर दृष्टि हुये बिना

केवलज्ञान का निर्णय नहीं होता, वह निर्णय क्रमबद्ध होता है। किंतु वह स्वद्रव्य के आधार से होता है, लेकिन अल्पज्ञता के आधार से नहीं होता है।

जगत के तत्त्व जिसप्रकार हैं, उसप्रकार भगवान ने केवलज्ञान से जाने और वाणी द्वारा कहा। इसप्रकार जो निर्णय करता है—वह पर्यायबुद्धि, निमित्तबुद्धि और अल्पज्ञबुद्धि को हेय मानता है; और ज्ञानगुण को उपादेय मानता है। अर्थात् यह ज्ञानगुण आत्मा का है इसलिये आत्मा को उपादेय मानता है, उसको सम्यग्दर्शन हुये बिना नहीं रहता है। केवलज्ञान का अथवा सर्वज्ञ का निर्णय करनेवाले को अल्पज्ञता और राग-द्वेष की हेयबुद्धि बरतती है, वह उसको उपादेय नहीं मानता है। वह तो शुद्ध अंतरस्वभाव को ही उपादेय मानता है। जगत के पदार्थ व्यवस्थित परिणमित हो रहे हैं। लोकालोक में कोई भी पर्याय उल्टी-सीधी नहीं होती, ऐसा निर्णय करनेवाले जीव को सर्वज्ञता प्रगट होती है, वह ऐसे द्रव्यस्वभाव को ही उपादेय मानता है। जो जीव वस्तुस्वरूप को क्रमबद्ध नहीं मानता वह केवली को नहीं मानता। उसको द्रव्य-गुण-पर्याय के स्वरूप की और देव-गुरु-शास्त्र के स्वरूप की श्रद्धा नहीं है।

प्रश्न :- इसमें पुरुषार्थ कहाँ से आया ?

समाधान :- सर्वज्ञ की प्रतीति करनेवाला गुणी का आदर करनेवाला है, ज्ञानगुण परिणमित होकर केवलज्ञानरूप होता है और उस गुण को धारण करनेवाली स्वयं की आत्मा है। पहिले अज्ञानदशा में राग को ज्ञान के साथ एकत्व मानता था अथवा निमित्त से अल्पबुद्धि थी वह दूर होकर गुणी में एकत्व हुई। जो शक्ति निमित्त और राग में अटकती थी, वह स्वभाव की ओर झुकने लगी। कारण कि स्वभाव की एकाग्रता होने से सर्वज्ञदशा होगी, वह शक्ति वीर्य अथवा पुरुषार्थ है, वह सम्यग्दर्शन और ज्ञान है, और वही जैनधर्म है। केवली भगवान को सर्वज्ञता कहाँ से प्राप्त हुई ? गुणी में (आत्मद्रव्य में) एकाग्रता होने से वह प्रगट हुई है। ऐसा निर्णय लेने से आत्मा की ओर दृष्टि जाती है। इसप्रकार क्रमबद्ध की स्वीकारोक्ति करनेवाले को द्रव्यदृष्टि होती है, और राग तथा अल्पज्ञता की हेयबुद्धि रहती है।

यह मार्गणा का अधिकार है। मिथ्यादृष्टि को मार्गणा होती है। लेकिन उसको मार्गणा—खोजना (ढूँढ़ना) नहीं होता—क्योंकि उसको शुद्धनय का पता नहीं है, इसीप्रकार अशुद्धनय का भी पता नहीं है। धर्मी जीव जिसको शुद्धनय का ज्ञान है, वह अशुद्धनय से स्वयं

की तथा अन्य की पर्याय का ज्ञान करता है। केवलज्ञान भी पर्याय है, उसमें दिखनेवाले जगत के पदार्थ क्रमशः परिणमित होते हैं। इसप्रकार केवलज्ञान का निर्णय करने से द्रव्य का निर्णय होता है, देव-गुरु-शास्त्र का निर्णय होता है, और यही पुरुषार्थ है।

पहिले एक भाई ने प्रश्न किया कि केवलज्ञानी ने जैसा देखा है, वैसा होता हो तब पुरुषार्थ नहीं रहता। तब उससे कहने में आता है कि केवलज्ञानी है या नहीं? उसका अस्तित्व तुमने स्वीकार किया है? जिसकी बात पूछते हो उसकी स्वीकारोक्ति है न? प्रश्न पूछनेवाले ने कहा 'मेरे लिये उसका काम नहीं है।' उससे कहा जाता है कि 'ऐसा नहीं चलता।' तुम ऐसा कह सकते हो कि संसार में कोई सर्वज्ञ नहीं हो सकता, अथवा सर्वज्ञ को न माने तो क्या आपत्ति है? किंतु केवलज्ञानी ने जैसा देखा, वैसा होता हो तो पुरुषार्थ नहीं होता—इस प्रश्न के पहिले केवलज्ञानी की अस्ति स्वीकार करना चाहिये।

आत्मा है, तब उसका स्वभाव ज्ञान भी है और जिसका जो स्वभाव हो वह पूर्ण नहीं होता, ऐसा नहीं होता। पूर्ण व्यक्तता न होती तो वह उसका स्वभाव नहीं कहा जा सकता। अर्थात् आत्मा माननेवाले ने ज्ञानस्वभाव माना और उसकी पूर्णदशा केवलज्ञान माना। और केवलज्ञान माननेवाला क्रमबद्धपर्याय माने बगैर नहीं रहता है, उसको पर्यायबुद्धि नहीं होती, उसको स्वभावबुद्धि होती है। इसका नाम पुरुषार्थ है। इसप्रकार जिसको विचार आया उसका पुरुषार्थ जागृत होता है। जगत समझे या न समझे वह उसके कारण से है। जगत की पर्याय उल्टी-सीधी नहीं होती है, ऐसा निर्णय करनेवाले को अहंकार का पानी उतर जाता है और पहिले की विपरीत मान्यता शून्य (व्यर्थ) हो जाती है।

सर्वज्ञ का निर्णय होने से सर्वज्ञ दोषरहित होते हैं ऐसा निर्णय होता है। उनके भोजनपान नहीं होता (कवलाहार नहीं करते), रोग नहीं होता। जो जीव ऐसा मानता है कि सर्वज्ञ भोजन लेते हैं, रोग होता है; वह देव-गुरु-शास्त्र को समझता नहीं है। ज्ञानपर्याय अंतर्मुखी होकर केवलज्ञान प्रगट हुआ, उनको संयोगरूप से परम औदारिक स्फटिक जैसा शरीर होता है और आहार नहीं होता। इसप्रकार सर्वज्ञता प्रगट होने से कैसा संयोग हो और कैसे संयोग का अभाव हो वह धर्मी जीव जान लेता है।

लैंडी पीपर ६४ पहरी प्रगट होती है, वह कहाँ से होती है? वर्तमान में तीखापन

(चरपरापन) कम है। ६४ पहरी अव्यक्त है। वह शक्ति में से व्यक्त होगी। उसीप्रकार वर्तमान पर्याय में अल्पज्ञता है, गुण अव्यक्त है। मेरा स्वभाव सर्वज्ञशक्तिवाला है ऐसा निर्णय कर अंतर (चैतन्य) में उतरने से सर्वज्ञता व्यक्त होती है। यही पुरुषार्थ है। यह बात न्याय से कही जाती है। आत्मा है तब वह स्वयंसिद्ध है। आत्मा है तब ज्ञानस्वभाव है, ज्ञान सविकल्प है, वह विशेषरूप से पदार्थ को निश्चित करता है। परमभावग्राहकदृष्टि से ज्ञान ही आत्मा है। क्योंकि ज्ञान अनंत गुणों को जानता है। इसप्रकार आत्मा 'ज्ञ' स्वभावी है। ऐसा निर्णय करने से अल्पज्ञता नहीं रहती। साधकदशा में अभी राग-द्वेष होंगे, लेकिन अल्पराग का ज्ञाता रहकर शुद्धता वृद्धिंगत करता हुआ वीतरागता प्राप्त कर केवलज्ञान प्राप्त करेगा। इसप्रकार अनंत जीवों ने केवलज्ञान प्राप्त किया, वर्तमान में प्राप्त करते हैं, और भविष्य में प्राप्त करेंगे। जहाँ तक वस्तुस्थिति विचार में न आये और भावभासना न हो वहाँ तक सब व्यर्थ है। सर्वज्ञ भगवान, निर्ग्रंथ गुरु और शास्त्र इसप्रकार स्पष्ट कह रहे हैं।

अज्ञानी जीव मानता है कि मेरी चतुराई से पैसा आता है, यह जीव व्यर्थ का अभिमान करता है। पैसा तो पुद्गल जड़ है। वह अपने परावर्तन के समय आता है और जाता है। पैसा आने का समय था इसलिये आया है। जीव की होशियारी (चतुराई) के कारण से नहीं आया है। वस्तुस्थिति ऐसी है। मेरा स्वभाव ज्ञान से परिपूर्ण है। मेरी कमजोरी है इसलिये अल्पज्ञता है और पूर्ण हूँ, इसलिये सर्वज्ञता प्रगट कर सकता हूँ—ऐसा हूँ। केवलज्ञान मानने में न आये तो संसार कभी नष्ट नहीं होता, लेकिन वस्तुस्थिति ऐसी नहीं है।

प्रश्न – तब फिर चरणानुयोग में मंद कषाय करने का उपदेश क्यों दिया?

समाधान – मंदकषाय जिस काल होना है, उसी काल में होता है, अन्य समय में नहीं। फिर भी तत्त्वज्ञान के लक्ष्यपूर्वक चरणानुयोग में कथन होता है।

और फिर प्रवचनसार गाथा ८० में कहा है —

जो जाणदि अरहंतं, दव्वत्तगुणत्तपज्जयत्तेहिं।
सो जाणदि अप्पाणं, मोहो खलु जादि तस्स लयं॥८०॥

जो जीव अरहंत के द्रव्य-गुण-पर्याय को जानते हैं कि मेरा आत्मा वैसा ही शक्तिरूप से है, अंतर्मुख होने से केवलज्ञान प्रगट करने की शक्ति मेरे में है—ऐसा निर्णय करनेवाले को

क्षायिकसम्यक्त्व होता है। अरहंत भगवान की केवलज्ञान, केवलदर्शन, अनंतवीर्य, अनंत सुख वगैरह अर्थपर्याय और उनकी व्यंजनपर्याय को जो जानता है; निर्णय करता है कि मैं भी उसी जाति का हूँ; मैं मेरे द्रव्य के अवलंबन से उस अवस्था को प्रगट कर सकूँगा—उसका दर्शनमोह नष्ट होता है। इसप्रकार क्षायिकसम्यक्त्व की बात कही।

और फिर गाथा ८२ में कहा है —

सव्वे वि य अरहंता तेण विधाणेण खविदकम्मंसा।
किच्चा तथोवदेसं णिव्वादा ते णमो तेसिं॥८२॥

अनंत अरहंतों ने उस ही विधि से कर्मों का नाश किया तथा उसीप्रकार उपदेश दिया; मोक्ष प्राप्त किया–उनको नमस्कार हो। इसप्रकार कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने प्रवचनसार में स्पष्ट कहा है।

फिर कोई कहता है कि जड़ पदार्थों में पर्याय क्रमबद्ध होती है, लेकिन आत्मा में क्रमबद्ध नहीं होती। यह बात भी असत्य है। जड़पदार्थ क्रमबद्ध परिणमित हो रहे हैं, वे ज्ञेय हैं, उनको ज्ञान जानता है, जड़पदार्थ व्यवस्थित है। इसप्रकार जो ज्ञान निर्णय करता है, वह ज्ञान भी क्रमबद्ध है, उल्टा–सीधा नहीं है। ज्ञान क्रमबद्ध है, इसमें ही सर्वज्ञ का निर्णय है, और सर्वज्ञ के निर्णय में सम्यग्दर्शन होता है।

प्रश्न :- जैसे ज्ञेय व्यवस्थित है वैसे ज्ञान क्रमबद्ध हैं; उसीप्रकार कर्म के उदयानुसार राग होता है, वह भी क्रमबद्ध है न?

समाधान :- 'नहीं'। कर्म के उदयानुसार राग हो तब कर्म और राग एक हो जाते हैं और राग की पर्याय भी सिद्ध नहीं होती है। इसलिये यह बात मिथ्या है। धर्मी जीव जानता है कि पर्याय की योग्यता मेरे कारण से है, कर्म के अनुसार नहीं। अनादि अनंत काल के जितने समय हैं, उतनी चारित्रगुण की पर्यायें हैं। वे क्रमपूर्वक स्वयं के कारण से हैं। ज्ञानी जानता है कि राग होता है, उस समय कर्म निमित्त है, लेकिन कर्म का उदय कर्म के कारण से है। कर्म के उदय के कारण राग नहीं है। उसीप्रकार कर्मोदय के प्रमाण में भी राग नहीं है। कर्मोदय के प्रमाण में राग करना पड़े तो निगोद में से निकलने का अवसर भी न मिले। निगोद के जीवों की कर्मों की उत्कृष्ट स्थिति एक सागर की है। वहाँ से निकलकर कोई पंचेन्द्रिय मनुष्य हो तो वहाँ विग्रहगति में ही अंत:कोड़ाकोड़ी की स्थिति का कर्म बाँधता है।

एक सागर की स्थितिवाले ही कर्म उदय में हैं, और अंत:कोड़ाकोड़ी अर्थात् इतनी अधिक लंबी स्थिति के कर्म कैसे बाँधता है ? इसलिये कर्म के उदयानुसार जीव राग नहीं करता, लेकिन कम या ज्यादा स्वयं की योग्यतानुसार करता है। कर्म के उदयानुसार राग हो तो साधक होने का अथवा मंद राग करने का भी प्रसंग नहीं रहता। राग के प्रमाण में जड़कर्म का उदय होना चाहिये—ऐसा निमित्त-नैमित्तिक संबंध का अर्थ नहीं है। कर्मों के उदयानुसार राग हो ऐसा माननेवाला मूढ़ है। उसको कर्म के साथ एकत्वबुद्धि है। धर्मी जीव को उदय के सन्मुख दृष्टि नहीं है, लेकिन स्वभावसन्मुख दृष्टि है। जिसप्रकार का राग और जितने प्रमाण में हो उसको उसप्रकार से जानता है, और कर्म का उदय निमित्त है—ऐसा भी जानता है। अन्य के कारण मेरे में कुछ नहीं है, और मेरे कारण पर में कुछ नहीं है—ऐसा वह जानता है। [क्रमश:]

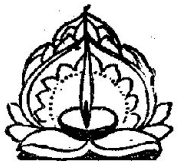

अरहंत का सेवक

अभी यह तो जानता नहीं है कि निश्चय क्या है और व्यवहार क्या है, और पहले व्यवहारशुद्धि के बिना मात्र निश्चयनय की बातें करता है; वह अरहंत का सेवक नहीं कहा जा सकता है। अरहंत का सेवक होने के लिये एकबार सर्वस्व छोड़ देना होता है। जहाँ व्यवहारशुद्धि का तो ठिकाना नहीं है और मात्र निश्चय की बातें करता है, वह भूलता है।

— मुक्ति का मार्ग : पूज्य श्री कानजीस्वामी

ज्ञान-गोष्ठी

सायंकालीन तत्त्वचर्चा के समय विभिन्न मुमुक्षुओं द्वारा पूज्य स्वामीजी से किये गये प्रश्न और स्वामीजी द्वारा दिये गये उत्तर।

प्रश्न– शुभ-अशुभ भाव में व्यवहार से भेद होने पर भी परमार्थ से भेद माननेवाला घोर संसार में भटकेगा ऐसा शास्त्र में कहा है; तथा देव-गुरु-वाणी पुण्य के बिना मिलती नहीं; ऐसी स्थिति में अग्रिम भव में उन्हें प्राप्त करने के लिये पुण्य की अपेक्षा तो रहती है न?

उत्तर– पुण्य से देव-गुरु-वाणी का योग मिलता है, यह बात सत्य है; परंतु पुण्य भाव वर्तमान में दु:खरूप है और भावी दु:ख का कारण भी है—ऐसा शास्त्र में कहा है। कारण कि पुण्य से जो सामग्री मिलेगी उसके लक्ष से राग होगा वह दु:खरूप है। भगवान की वाणी मिले और उसके समक्ष लक्ष जाये वह राग भी दु:खरूप है। शुभराग आता है, होता है; फिर भी चेतन का धर्म शुभराग नहीं है, शुभराग तो दु:खरूप ही है। आहाहा! यह बात जगत को चुभती हुई लगती है और सूक्ष्म होने के कारण अंतर प्रवेश होना कठिन है, परंतु क्या करें सत्य तो ऐसे ही है।

प्रश्न– आप पुण्य को हेय क्यों कहते हैं?

उत्तर– श्री योगीन्दुदेव ने कहा है कि हिंसा-झूठ-चौर्यादि तो पापभाव हैं ही, परंतु दया-दान-पूजा-भक्ति आदि के शुभभाव भी परमार्थ से पाप हैं, क्योंकि वे जीव को स्वरूप से पतित करते हैं। अहाहा! पाप को तो पाप सभी कहते हैं, परंतु अनुभवी जीव तो पुण्य को भी पाप कहते हैं। बहुत सूक्ष्म बात है—अंतर से समझे तो समझ में आये-ऐसी बात है।

पापभाव को पाप तो, जानत हैं सब लोय।
पुण्यभाव भी पाप है, जाने बिरला कोय॥

प्रश्न– शास्त्र द्वारा मन से आत्मा जाना हो उसमें आत्मज्ञान हुआ कि नहीं?

उत्तर– यह तो शब्दज्ञान हुआ, आत्मा जानने में नहीं आया; आत्मा तो आत्मा से जाना जाता है। शुद्ध उपादान से हुए ज्ञान में साथ में आनंद आता है; किंतु अशुद्ध उपादान से हुए ज्ञान में साथ में आनंद आता नहीं और आनंद आये बिना आत्मा वास्तव में जानने में आता नहीं।

प्रश्न– क्या द्रव्यलिंग मोक्ष का कारण नहीं है ?

उत्तर– शास्त्रज्ञान द्रव्यलिंग है, नवतत्त्व की भेदवाली श्रद्धा तथा छह जीवनिकाय का चारित्र भी द्रव्यलिंग है, शास्त्र का विकल्प और पंच महाव्रतादि का विकल्प भी द्रव्यलिंग है, तदुपरांत शरीर का नग्नत्व भी द्रव्यलिंग है। इस द्रव्यलिंग में संत रुके नहीं और भावलिंगरूप दर्शन–ज्ञान–चारित्र का सेवन करके मोक्षमार्ग और मोक्ष को प्राप्त किया। यदि द्रव्यलिंग मोक्ष का कारण होता तो उसे छोड़कर संतजन अंदर आत्मा के आश्रय में क्यों जाते ? जिस श्रद्धा–ज्ञान को चैतन्यप्रभु का आश्रय नहीं है—वह श्रद्धा–ज्ञान द्रव्यलिंग है, शरीर–आश्रित है; परद्रव्य है, स्वद्रव्य नहीं।

प्रश्न– शास्त्र में पर्याय को अभूतार्थ क्यों कहा है ? क्या उसकी सत्ता नहीं है ?

उत्तर– त्रिकालीस्वभाव को मुख्य करके भूतार्थ कहा और पर्याय को अभूतार्थ कहा अर्थात् पर्याय है नहीं—ऐसा कहा। वहाँ पर्याय को गौण करके ही 'नहीं है' ऐसा कहा; परंतु इससे ऐसा मत समझना कि पर्याय सर्वथा है ही नहीं। इसी भाँति सम्यग्दृष्टि को राग नहीं, दु:ख नहीं, ऐसा कहा; परंतु इससे ऐसा मत समझना कि वर्तमान पर्याय में राग–दु:ख सर्वथा है ही नहीं। पर्याय में जितना राग है उतना दु:ख भी अवश्य है। जहाँ शास्त्र में ऐसा कहा है कि सम्यग्दृष्टि के राग या दु:ख नहीं है सो वह तो दृष्टि की प्रधानता से कहा, किंतु पर्याय में जितना आनंद है उतना भी ज्ञान जानता है और जितना राग है उतना दु:ख भी साधक को है; ऐसा ज्ञान जानता है। यदि वर्तमान पर्याय में होनेवाले राग व दु:ख को ज्ञान न जाने तब तो धारणाज्ञान में भी भूल है। सम्यग्दृष्टि के दृष्टि का जोर बताने के लिये ऐसा भी कहा कि वह निरास्रव है, किंतु यदि आस्रव सर्वथा न हो तब तो मुक्ति हो जानी चाहिये। कर्ता–कर्म अधिकार में ऐसा कहा कि सम्यग्दृष्टि के जो राग होता है उसका कर्ता पुद्गलकर्म है, आत्मा उसका कर्ता नहीं है; तथा प्रवचनसार में ऐसा कहा कि ज्ञानी के जो राग होता है, उसका कर्ता आत्मा है, राग का अधिष्ठाता

आत्मा है। फिर भी एकांत माने कि ज्ञानी राग का—दुःख का कर्ता-भोक्ता नहीं है तो वह जीव नयविवक्षा को नहीं समझने के कारण मिथ्यादृष्टि है।

एक पर्याय जितना अपने को मानना भी मिथ्यात्व है। तो फिर राग को अपना मानना, शरीर को अपना मानना, माता-पिता धनादि को अपना मानना तो महान मिथ्यात्व है। आहाहा! अपने को बहुत बदलना पड़ेगा। अनेक प्रकार की मिथ्या मान्यताओं को छोड़कर ही आत्मसन्मुख जा सकोगे।

प्रश्न- दुःख का वेदन तो पुद्गल की पर्याय है न?

उत्तर- किसने कहा कि पुद्गल की पर्याय है? वह तो जीव की ही पर्याय है, दुःख का वेदन जीव की पर्याय में होता है। यह तो जीव में से निकल जाता है और जीव का स्वभाव नहीं है तथा पुद्गल के लक्ष से होता है; इसलिए द्रव्यदृष्टि कराने के प्रयोजन से उसको पुद्गल की पर्याय कहा गया है। किंतु दुःख का वेदन तो जीव की पर्याय में ही होता है, पुद्गल में नहीं।

प्रश्न- मुनिराज तो महाव्रतादि पालते हैं, उन्हें आस्रवभाव क्यों कहा है? वे तो चारित्र हैं?

उत्तर- धवला भाग १ और १२ में आता है कि मुनि पंचमहाव्रत को 'भुक्ति' अर्थात् भोगते हैं, परंतु पंच महाव्रत को करते हैं अथवा पालते हैं ऐसा नहीं कहा। जैसे जगत के जीव अशुभराग को भोगते हैं, वैसे ही मुनि भी शुभराग को भोगते हैं। समयसारादि अध्यात्मशास्त्रों में तो ऐसा लेख आता ही है, परंतु व्यवहार के ग्रंथ धवला में भी मुनि पंच महाव्रत के शुभराग को भोगते हैं-ऐसा कहा है। शुभराग को करते हैं या पालते हैं ऐसा नहीं कहा।

कंबल या गलीचा आदि पर छपा हुआ सिंह किसी को मार नहीं सकता, वह तो कथनमात्र ही सिंह है। उसीप्रकार अंतर्जल्प-बाह्यजल्प बाह्यक्रियारूप चारित्र है, वह कथनमात्र चारित्र है, सच्चा चारित्र नहीं है; कारण कि वह आत्मद्रव्य के स्वभावरूप नहीं है, पुद्गलद्रव्य के स्वभावरूप होने से वह कर्म के उदय का कार्य है। भले ही अशुभ से बचने के लिये शुभ होता है; परंतु है तो वह बंध का ही कारण, मोक्ष का कारण तो है नहीं। ●●

समाचार दर्शन

पूज्य गुरुदेव श्री कानजीस्वामी का जन्म-जयंती समारोह सानंद संपन्न

बम्बई :- स्थानीय घाटकोपर में पूज्य गुरुदेव श्री कानजीस्वामी का ८९वाँ जन्म-जयंती समारोह वैशाख शुक्ल द्वितीया दिनांक ९-५-७८ को सानंद संपन्न हुआ। समारोह-स्थल का विशाल पांडाल बड़े ही सुंदर ढंग से सजाया गया था। इस समारोह में भाग लेने के लिये दूर-दूर से सहस्राधिक मुमुक्षु भाई पधारे। दिगंबर जैन महासमिति के अध्यक्ष श्री साहू श्रेयांसप्रसादजी, श्री दिगंबर जैन तीर्थरक्षा कमेटी के महामंत्री श्री जयचंदजी लोहाड़े भी इस अवसर पर उपस्थित थे। जन्म-जयंती के दिन बड़े सबेरे से ही पांडाल में लोगों का जमघट हो गया था। सभी पूज्य गुरुदेव को श्रीफल भेंट करने के लिये आतुर लंबी लाइन में अपने नंबर की प्रतीक्षा कर रहे थे।

स्मरण रहे कि पूज्य गुरुदेवश्री दिनांक १५-४-७८ से घाटकोपर बम्बई में विराज रहे थे, उनके दैनिक मार्मिक प्रवचन हजारों की जनसंख्या में हो रहे थे। इसके पश्चात् चार दिन मलाड़ (बम्बई) में उनके प्रवचनों का आयोजन था। इस अवसर पर लगभग २१,००० रुपये का धार्मिक साहित्य बिका एवं आत्मधर्म व जैनपथ प्रदर्शक के अनेक ग्राहक बने। यहाँ से गुरुदेव कुराबड़ पंचकल्याणक के लिये प्रस्थान कर गये।

जयपुर :- पूज्य गुरुदेव श्री कानजीस्वामी की ८९वीं जन्म-जयंती ९ मई १९७८ को श्री टोडरमल दिगंबर जैन सिद्धांत महाविद्यालय, जयपुर के छात्रों द्वारा विभिन्न कार्यक्रमों के साथ सानंद मनायी गयी। प्रातः सामूहिक पूजन तथा रात्रि को भक्ति के कार्यक्रम के पश्चात् श्री पूरणचंदजी गोदीका की अध्यक्षता में एक सभा का आयोजन किया गया। अनेक छात्रों एवं मुमुक्षु भाइयों ने पूज्य गुरुदेव के जीवन के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डाला। सभी ने पूज्य गुरुदेव के दीर्घ जीवन की कामना की। *— रमेश जैन*

विदिशा :- समयसार का रहस्योद्घाटन करनेवाले पूज्य स्वामीजी का ८९वाँ जन्म-दिन बड़े हर्षोल्लास और सादगी से मनाया गया। प्रातः महिलाओं द्वारा प्रभात फेरी तथा रात्रि को विशाल आम सभा का आयोजन किया गया। सभा की अध्यक्षता पंडित जयकुमारजी सिंगोड़ीवालों ने की। उक्त अवसर पर सर्वश्री नंदकिशोरजी एडवोकेट, जवाहरलालजी

बाबूलालजी एडवोकेट, पंडित लालजीराम आदि ने अपने हृदयोद्‌गार व्यक्त कर पूज्य श्री के उपकारों को मानते हुए शुभकामनायें व्यक्त कीं। अंत में पंडित जयकुमारजी ने पूज्य श्री के 'चैतन्य चमत्कार' से आत्मविभोर होकर अनेक संबंधित संस्मरण सुनाये। सभा का संचालन सेठ राजेन्द्रकुमारजी ने किया। — **विद्यानंद जैन**

सहारनपुर :- दिनांक ९-५-७८ को जिनेन्द्र पूजन के पश्चात् स्थानीय मुमुक्षु मंडल के तत्त्वावधान में श्री लालचंदजी सर्राफ की अध्यक्षता में पूज्य गुरुदेव की जन्म-जयंती उत्साहपूर्वक मनायी गयी। विभिन्न वक्ताओं ने स्वामीजी के सद्‌गुणों पर प्रकाश डालते हुए श्रद्धा व्यक्त की। — **देवचंद जैन**

मलकापुर :- यहाँ पूज्य कानजीस्वामी का जन्म-जयंती उत्सव बहुत उत्साह से मनाया गया। सभी मुमुक्षु भाइयों ने, गुरुदेव हमारे लिये चिरंजीवी बनें, ऐसी मंगलकामना की। सभा में अनेक लोगों ने अपने उद्‌गार व्यक्त किये। — **नेमीचंद जैन**

भोपाल :- वैशाख सुदी दोज की पूज्य कानजीस्वामी की ८९वीं जन्म-जयंती उत्साहपूर्वक मनायी गयी। इस अवसर पर श्री हेमराजजी की अध्यक्षता में एक सभा का आयोजन किया गया। जिसमें सर्व श्री पंडित सरनारामजी, पंडित राजमलजी, डॉ० कपूरचंदजी कौशल, सूरजमलजी नरपत्या, डालचंदजी एवं राजमलजी पवैया आदि वक्ताओं ने स्वामीजी के जीवन पर प्रकाश डाला तथा उनके दीघ्र जीवन की कामना की। — **प्रमोद जैन**

कुराबड़ में पंचकल्याणक सानंद संपन्न
पूज्य गुरुदेवश्री के प्रवचनों द्वारा अभूतपूर्व प्रभावना

कुराबड़ (राज०) :- यहाँ दिनांक १३-५-७८ से २०-५-७८ तक पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव पूज्य गुरुदेव श्री कानजीस्वामी के सान्निध्य में सानंद संपन्न हुआ। धर्मप्रेमी समाज ने समारोह में लगभग २५ हजार की संख्या में भाग लेकर धर्मलाभ लिया। लगभग पंद्रह हजार व्यक्ति तो प्रतिदिन भोजन करते थे। पूज्य गुरुदेव के समयसार गाथा ७१, ७२, ७३ पर हुए प्रवचनों को समाज ने मंत्रमुग्ध होकर सुना, जिससे समाज में अभूतपूर्व धर्म प्रभावना हुई।

इस अवसर पर पंडित बाबूभाई मेहता फतेपुर, डॉ० हुकमचंदजी भारिल्ल जयपुर, पंडित ज्ञानचंदजी विदिशा, पंडित रतनचंदजी विदिशा, पंडित प्रकाशचंदजी 'हितैषी' दिल्ली, पंडित भरत चक्रवर्ती मद्रास आदि विद्वानों के प्रवचनों का भरपूर लाभ भी समाज ने लिया।

प्रतिष्ठा महोत्सव की कार्यविधि पंडित धन्नालालजी गवालियरवालों द्वारा संपन्न करायी गयी। घाटकोपर (बम्बई) भजन-मंडली द्वारा प्रस्तुत सांस्कृतिक कार्यक्रम विशेष आकर्षण के केन्द्र रहे। वीतराग-विज्ञान पाठशाला उज्जैन के छात्रों ने भी रोचक कार्यक्रम प्रस्तुत किये।

दीक्षा कल्याणक के अवसर पर सर्वश्री मीठालाल रूपचंद भगनोत, छोगालालजी ठाकड़या, मन्नालालजी ठाकड़या, भंवरलालजी ठाकड़या, जवानमलजी भोंरावत तथा पन्नालालजी नावड़या ने पूज्य गुरुदेवश्री से सपत्नीक ब्रह्मचर्य व्रत लिया। इसके पूर्व भगवान के पिता-माता बननेवाले सेठ जवाहरलालजी विदिशा तथा उनकी पत्नी ने भी ब्रह्मचर्य व्रत लिया। इस अवसर पर आत्मधर्म के लगभग ३०० तथा जैनपथ प्रदर्शक के लगभग १०० ग्राहक बने और हजारों रुपये का सत्साहित्य बिका।

श्री वीतराग-विज्ञान विद्यापीठ परीक्षाबोर्ड का अधिवेशन एवं कार्यकारिणी की मीटिंग सानंद संपन्न

कुराबड़ :- दिनांक १८-५-७८ को रात्रि में श्री पंडित प्रकाशचंदजी 'हितैषी', संपादक सन्मति संदेश की अध्यक्षता में श्री वी० वि० विद्यापीठ परीक्षाबोर्ड का अधिवेशन सानंद संपन्न हुआ। परीक्षाबोर्ड के संयुक्त मंत्री श्री डॉ० हुकमचंदजी भारिल्ल ने परीक्षाबोर्ड की संक्षिप्त रिपोर्ट में बताया कि परीक्षाबोर्ड का प्रारंभ मात्र ५७० छात्रों से हुआ था। आठ वर्ष के अल्पकाल में यह संख्या बीस हजार तक पहुँच गयी है। इसके पश्चात् श्री बाबूभाई मेहता एवं पंडित प्रकाशचंदजी 'हितैषी' अपने अध्यक्षीय भाषण में उदयपुर में लगनेवाले प्रशिक्षण शिविर में समाज के बंधुओं एवं धर्माध्यापकों से पधारने का अनुरोध किया। दोपहर में परीक्षाबोर्ड की कार्यकारिणी की मीटिंग श्री बाबूभाई मेहता की अध्यक्षता में हुई, जिसमें अनेक महत्त्वपूर्ण निर्णय लिये गये।

अ० भा० जैन युवा फैडरेशन का अधिवेशन संपन्न

कुराबड़ :- दिनांक १७-५-७८ को अ० भा० जैन युवा फैडरेशन का प्रथम अधिवेशन श्री पन्नालालजी गंगवाल, कलकत्तावालों की अध्यक्षता में संपन्न हुआ। फैडरेशन के अध्यक्ष श्री राजकुमारजी एडवोकेट ने इसकी गतिविधियों से समाज को अवगत कराया। तत्पश्चात् श्री बाबूभाई मेहता एवं डॉ० हुकमचंदजी भारिल्ल ने फैडरेशन की उपयोगिता पर

विचार व्यक्त करते हुए इसकी प्रगति की कामना की। सर्वसम्मति से श्री पन्नालालजी गंगवाल को फैडरेशन का संरक्षक बनाया गया। — अखिल बंसल, महामंत्री

आध्यात्मिक शिक्षण-प्रशिक्षण शिविर का भव्य उद्घाटन
पूज्य श्री कानजीस्वामी का मंगल आशीर्वाद
राजस्थान के स्वास्थ्यमंत्री श्री त्रिलोकचंदजी जैन द्वारा उद्घाटन भाषण

उदयपुर :- दिनांक २२-५-७८ को महिला मंडल में श्री दिगंबर जैन मुमुक्षु मंडल के तत्त्वावधान में पंडित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर द्वारा संचालित श्री वीतराग-विज्ञान विद्यापीठ परीक्षा बोर्ड का १२वाँ शिक्षण-प्रशिक्षण शिविर का उद्घाटन पूज्य श्री कानजीस्वामी एवं राजस्थान के स्वास्थ्य मंत्री श्री त्रिलोकचंदजी जैन द्वारा सानंद संपन्न हुआ।

अतिथियों के स्वागत एवं स्वागताध्यक्ष श्री कन्हैयालालजी टाया के भाषण के पश्चात् पूज्य स्वामीजी ने शिविर को मंगल आशीर्वाद प्रदान करते हुए समयसार गाथा ७४ पर हृदय को छू लेनेवाला मार्मिक प्रवचन किया। तत्पश्चात् शिविर की संक्षिप्त रूपरेखा डॉ० हुकमचंदजी भारिल्ल ने प्रस्तुत की। पश्चात् श्री त्रिलोकचंदजी जैन ने अपने उद्घाटन भाषण में गुरुदेवश्री के सत्समागम की महिमा और इच्छा व्यक्त करते हुए सुंदर कहानी के माध्यम से समझाया कि कूड़े-कचरे को साफ करके हमें ज्ञानज्योति से अपने चैतन्य घर को भर लेना चाहिये।

इस मांगलिक अवसर पर झण्डारोहण सेठ श्री पूरणचंदजी गोदीका, जयपुर एवं सेठ श्री पन्नालालजी गंगवाल, कलकत्ता ने किया।

उक्त शिविर दिनांक २२-५-७८ से १०-६-७८ तक २० दिन चलेगा। इसमें प्रारंभ के ३ दिन - दिनांक २२, २३ व २४ मई को पूज्य श्री कानजीस्वामी रहे। उनके प्रतिदिन प्रातः व मध्याह्न के दो प्रवचनों एवं रात्रिकालीन तत्त्वचर्चा का अध्यात्मरसिक समाज ने भरपूर लाभ लिया। इस शिविर में भाग लेने के लिये स्थानीय समाज के अतिरिक्त बाहर से लगभग २०० अध्यापक बंधुजन तथा ५०० अध्यात्मप्रेमीजन पधारे हैं। इसप्रकार लगातार २० दिन तक हजारों व्यक्ति लाभ लेंगे—जिनके आवास एवं भोजन की सुंदर व्यवस्था है। प्रसिद्ध आध्यात्मिक प्रवक्ता पंडित बाबूभाई चुन्नीलालजी मेहता, लोकप्रिय लेखक व तार्किक प्रवक्ता व कुशल प्रशिक्षक डॉ० हुकमचंदजी भारिल्ल, लोकप्रिय प्रवक्ता व प्रौढ़-शिक्षक पंडित

ज्ञानचंदजी विदिशा, एवं पंडित रतनचंदजी भारिल्ल के प्रवचनों एवं शिक्षण का लाभ पूरे २० दिन तक शिविरार्थियों को प्राप्त होगा।

उदयपुर समाज पूर्ण तत्परता एवं लगन से भाग ले रही है।

उल्लिखित विद्वत्गण एवं श्रेष्ठीजन के अतिरिक्त और भी अनेक त्यागीगण, विद्वान एवं श्रेष्ठीगण भाग ले रहे हैं। जिनमें कुछ नाम इसप्रकार हैं —

ब्रह्मचारी हेमराजी, ब्रह्मचारी पंडित धन्नालालजी ग्वालियर, ब्रह्मचारी दयाचंदजी, ब्रह्मचारी धरमचंदजी, ब्रह्मचारी राजकुमारजी, ब्रह्मचारी अभिनंदनकुमारजी, ब्रह्मचारी सेठ पंडित जवाहरलालजी विदिशा, सेठ श्री हीरालालजी भावनगर, सेठ श्री महेन्द्रकुमारजी सेठी जयपुर, सेठ श्री ताराचंदजी गंगवाल जयपुर, पंडित श्री देवीलालजी उदयपुर, पंडित सेठ श्री नेमीचंदजी पाटनी आगरा, पंडित गोविन्दप्रसादजी खडेरी, पंडित विमलचंदजी झांझरी उज्जैन, श्री केसरीमलजी वंडी इंदौर, पंडित भरत चक्रवर्ती मद्रास, सेठ श्री शांतिलालजी भायाणी मद्रास, ब्रह्मचारी पंडित रतनलालजी इंदौर, श्री रतनलालजी गंगवाल इंदौर, सेठ श्री छोटाभाई भीखाभाई बम्बई, ब्रह्मचारी डॉ० विजयाबेन पांगल कोल्हापुर, ब्रह्मचारी चंदुभाई सोनगढ़।

दिनांक ८, ९ एवं १० जून को दीक्षांत समारोह, प्रशिक्षणार्थी सम्मेलन, समापन समारोह, भारतवर्षीय वीतराग-विज्ञान पाठशाला समिति एवं कुन्दकुन्द कहान दिगंबर जैन तीर्थसुरक्षा ट्रस्ट के अधिवेशन-आदि विशेष कार्यक्रम होंगे जिनके समाचार अगले अंक में दिये जावेंगे।

इसके पूर्व पंडित ज्ञानचंदजी विदिशा दिनांक २६ अप्रेल से ३० अप्रेल तक ५ दिन के लिये उदयपुर पधारे थे। उनके दोनों समय प्रवचन चले एवं शिविर की उपयोगिता व महत्त्व लोगों को समझाया। इससे भी स्थानीय समाज में काफी जागृति हुई और शिविर के प्रति तीव्र जिज्ञासा उत्पन्न हुई।

— पंडित रतनचंद भारिल्ल

दुर्ग :- श्री विमलप्रकाशजी अजमेरा, डिप्टी कलेक्टर की प्रेरणा से यहाँ श्री महावीर कुन्दकुन्द दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट की स्थापना की गयी। इस ट्रस्ट में ११ ट्रस्टी हैं।

— कुंदनमल सेठी

उज्जैन :- दिनांक १-५-७८ को स्थानीय वीतराग-विज्ञान पाठशाला की तृतीय

वर्षगाँठ मनायी गयी। इस अवसर पर विभिन्न सांस्कृतिक कार्यक्रम आयोजित किये गये।

— प्रदीप झांझरी

बड़ौदा (गुजरात) :- गुजरात के प्रसिद्ध औद्योगिक नगर बड़ौदा में दिगंबर जैन मंदिर की स्थापना के लिये बहुत दिनों से प्रयत्न चल रहे थे, किंतु उपयुक्त स्थान प्राप्त न हो पाने के कारण अभी तक कार्य संभव न हो सका था। किंतु अब नगर के बीचों-बीच चार लाख रुपयों में एक सुंदर जमीन प्राप्त हो गयी है, जिसमें जैन मंदिर के साथ-साथ जैन समाज के २० फ्लेट (मकान) भी बनेंगे।

— पूनमचंद गाँधी

विदेश समाचार

अफ्रीका में दिगंबर जिनमंदिर का शिलान्यास

नैरोबी :- अफ्रीका (केन्या) के प्रमुख शहर नैरोबी में पूज्य श्री कानजीस्वामी के सदोपदेश से प्रभावित होकर १५ लाख रुपये की लागत का एक विशाल जिनमंदिर का निर्माण होने जा रहा है, जिसका शिलान्यास दिनांक १७-६-७८ को होगा।

इस अवसर पर नैरोबी दिगंबर जैन समाज के आग्रहपूर्ण आमंत्रण पर पंडित श्री लालचंदभाई अमरंचद मोदी, बम्बई एवं पंडित श्री बाबूभाई चुन्नीलाल मेहता, फतेपुर वहाँ जा रहे हैं। उनके द्वारा वहाँ विशेष धर्म प्रभावना होगी एवं तीर्थ सुरक्षा ट्रस्ट को भारी योगदान प्राप्त होगा।

— बसंतभाई दोशी

पाठकों के पत्र

इस शीर्षक के अंतर्गत पाठकों के आवश्यक पत्रों के महत्त्वपूर्ण अंशों को संक्षेप में प्रकाशित किया जावेगा।

मद्रास से श्री बाबूभाई दोसी लिखते हैं —

आत्मधर्म जब हाथ में आता है, तब बहुत प्रसन्नता होती है। पूज्य गुरुदेव के प्रवचन बहुत ही सरल भाषा में होने से इसे बार-बार पढ़ने का भाव आता है।

बाराँ (राज०) से श्री हीरालालजी बज लिखते हैं —

आपने आत्मधर्म में पूज्य स्वामीजी के माध्यम से सच्चे वस्तु के स्वरूप का निरंतर ज्ञान कराकर तुच्छ-बुद्धिवालों के हदय के कपाट खोल दिये हैं। उत्तम दशधर्मों के विश्लेषण में त्यागधर्म का हृदयग्राही स्वरूप समझाकर भोले जीवों का बहुत उपकार किया है।

रामटेक (महाराष्ट्र) से श्री कोमलचंदजी जैन लिखते हैं —

आत्मधर्म पढ़कर आत्मविभोर हो गया। इसमें आत्मा को समझने योग्य बहुत-सी बातें पढ़ने को मिलीं।

जसवंतनगर (उ०प्र०) से कु० कामिनी जैन, एम०ए० लिखती हैं —

आत्मधर्म पत्रिका मुझे बहुत ही पसंद है। दशधर्मों का ऐसा सूक्ष्म विश्लेषण सरल शैली के माध्यम से व्यक्त कर देना एक गौरव का प्रतीक है। इस आत्मधर्म पत्रिका ने समाज में फैली हुई भ्रांतियों को दूर करके समाज में एक नई चेतना का प्रादुर्भाव किया है।

दमोह (म०प्र०) से श्री लक्ष्मीचंदजी लिखते हैं —

आपके संपादकत्व में आत्मधर्म पत्रिका बहुत ही सुंदर ढंग से गहन विषयों को लेकर निकल रही है। पत्रिका का इंतजार रहता है, और आने पर सभी कार्य छोड़कर इसे देखने बैठ जाता हूँ।

भलौनी सूवा (उ०प्र०) से श्री दयाचंदजी शास्त्री लिखते हैं —

आत्मधर्म एक पत्रिका नहीं, अपितु एक लघु ग्रंथ है जो प्रत्येक माह किश्तों के रूप में आचार्य कुन्दकुन्ददेव के ग्रंथों की गाथाओं को पूज्य स्वामीजी द्वारा किये गये प्रवचनों के माध्यम से प्रकाशित करता है।

इंदौर (म०प्र०) से श्री चंद्रप्रकाशजी सोनी लिखते हैं —

आत्मधर्म में 'ज्ञान-गोष्ठी' के लिये अधिक से अधिक स्थान दें। संभव हो तो पूज्य स्वामीजी से विशुद्ध व्यावहारिक विषयों से लेकर पूर्ण तात्त्विक विषयों पर विस्तार से प्रश्नोत्तर किये जाकर 'ज्ञान-गोष्ठी' को और अधिक रुचिकर बनावें।

प्रबंध संपादक की कलम से

कृपया निम्नलिखित सूचनाओं पर अवश्य ध्यान दें —

(१) जिन भाईयों ने अभी तक अगले वर्ष का चंदा नहीं भेजा हो वे कृपया तत्काल भेजें, अन्यथा जुलाई मास से उनको आत्मधर्म भेजना संभव नहीं होगा।

(२) व्यवस्था को सुविधाजनक बनाने की दृष्टि से सभी वार्षिक ग्राहकों की ग्राहक संख्या में परिवर्तन करना पड़ा है। कृपया अपनी नयी ग्राहक संख्या जुलाई मास के आत्मधर्म पर लगे रैपर से देखकर अवश्य नोट कर लें।

(३) पत्र-व्यवहार करते समय अपनी ग्राहक संख्या अवश्य लिखें।

पंडित श्री लालचंदभाई मोदी, बम्बई के आध्यात्मिक प्रवचनों का आयोजन

जयपुर :- श्री टोडरमल दिगम्बर जैन सिद्धांत महाविद्यालय के कार्यक्रमों के अंतर्गत आषाढ़ी अष्टाह्निका के पावन अवसर पर दिनांक १३-७-७८ से २७-८-७८ तक पंद्रह दिन के लिये टोडरमल स्मारक भवन में सुप्रसिद्ध अनुभवी विद्वान् एवं आध्यात्मिक प्रवक्ता श्री लालचंदभाई अरमचंद मोदी, बम्बई के आध्यात्मिक प्रवचनों का आयोजन किया गया है। पंडित श्री जवाहरलालजी विदिशा भी पधारेंगे।

श्री डॉ० हुकमचंदजी भारिल्ल भी उन दिनों यहीं रहेंगे। उनके समागम का भी लाभ प्राप्त होगा।

बाहर से पधारनेवाले महानुभावों के लिये नि:शुल्क आवास एवं सशुल्क भोजन की व्यवस्था है।

बाहर से पधारनेवाले महानुभाव तत्काल सूचित करें जिससे उनके ठहरने आदि की समुचित व्यवस्था की जा सके। गतवर्ष श्री लालचंदभाई के प्रवचन सुनने बहुत लोग पधारे थे।

स्थानीय लोगों के लिये भी रात्रि विश्राम के लिये व्यवस्था की जावेगी, जिससे शहर से आनेवाले सायंकालीन एवं प्रात:कालीन दोनों प्रवचनों का लाभ उठा सकें।

— मंत्री, पंडित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट

पच्चीस वर्ष पहले

[इस स्तंभ में आज से पच्चीस वर्ष पहले आत्मधर्म (हिंदी) मे प्रकाशित महत्त्वपूर्ण अंशों को प्रकाशित किया जाता है।]

आत्मस्वभाव का माप

स्कूल में पढ़नेवाला आठ-नौ वर्ष का एक बालक रविवार का दिन होने से घर ही था। उसके पिता बाजार से एक मलमल का थान लाये। पुत्र ने पिता से पूछा कि यह थान कितना है ? पिता ने उत्तर दिया कि यह पचास हाथ है। लड़के ने उस थान को अपने हाथ से मापकर कहा कि यह थान तो पहचत्तर हाथ है। आपकी बात झूठ है।

तब पिता ने कहा—भाई! हमारे लेन-देन के काम में तेरे हाथ का माप नहीं चल सकता।

उसीप्रकार यहाँ ज्ञानी कहते हैं कि बाह्यदृष्टिवाले बाल अज्ञानी की बुद्धि में से उत्पन्न हुई कुयुक्ति अतीन्द्रिय आत्मस्वभाव को मापने में काम नहीं आती।

धर्मात्माओं के हृदय को अज्ञानी नहीं माप सकते। इसलिये ज्ञानी को पहिचानने के लिये प्रथम उस मार्ग का परिचय करो; रुचि बढ़ाओ; विशाल बुद्धि, सरलता, माध्यस्थता और जितेन्द्रियता इत्यादि गुण प्रगट करो। संत की पहिचान होने से सत् का आदर होगा और तभी धर्मात्मा का उपकार समझ में आयेगा तथा अपने गुणों का बहुमान आकर वर्तमान में ही अपूर्व शांति प्रगट होगी।

[आत्मधर्म, वर्ष ८, अंक ८६, ज्येष्ठ, वीर निर्वाण सं० २४७८, कवर पृष्ठ २]

Registration. No. RJ-2712

हमारे यहाँ प्राप्त प्रकाशन*

मोक्षशास्त्र	१२-००
समयसार	१२-००
समयसार पद्यानुवाद	०-७०
समयसार कलश टीका	६-००
प्रवचनसार	१२-००
पंचास्तिकाय	७-५०
नियमसार	५-५०
नियमसार पद्यानुवाद	०-४०
अष्टपाहुड़	१०-००
समयसार नाटक	७-५०
समयसार प्रवचन भाग १	६-००
समयसार प्रवचन भाग २	प्रेस में
समयसार प्रवचन भाग ३	५-००
समयसार प्रवचन भाग ४	७-००
आत्मावलोकन	३-००
श्रावकधर्म प्रकाश	३-५०
द्रव्यसंग्रह	१-५०
लघु जैन सिद्धांत प्रवेशिका	०-४०
प्रवचन परमागम	२-५०
धर्म की क्रिया	२-००
जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तर माला भाग १	१-५०
जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तर माला भाग २	१-५०
जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तर माला भाग ३	१-५०
तत्त्वज्ञान तरंगिणी	५-००
अलिंग-ग्रहण प्रवचन	१-६०
वीतराग-विज्ञान भाग ३ (छहढाला पर पूज्य स्वामीजी के प्रवचन)	१-००
बालपोथी भाग १	०-६०
बालपोथी भाग २	प्रेस में
ज्ञानस्वभाव ज्ञेयस्वभाव	४-००
बालबोध पाठमाला भाग १	०-५०
बालबोध पाठमाला भाग २	०-७०
बालबोध पाठमाला भाग ३	०-७०
वीतराग-विज्ञान पाठमालाल भाग १	०-७०
वीतराग-विज्ञान पाठमालाल भाग २	१-००
वीतराग-विज्ञान पाठमालाल भाग ३	१-००
तत्त्वज्ञान पाठमाला भाग १	१-२५
तत्त्वज्ञान पाठमाला भाग २	१-२५
जयपुर (खानियाँ) तत्त्वचर्चा भाग १ व २	३०-००

मोक्षमार्गप्रकाशक		प्रेस में
पंडित टोडरमल : व्यक्तित्व और कर्तृत्व		१०-००
तीर्थंकर महावीर और उनका सर्वोदय तीर्थ		५-००
" " (पॉकेट बुक साइज में हिन्दी में)		२-००
मैं कौन हूँ?		१-००
तीर्थंकर भगवान महावीर		०-४०
वीतरागी व्यक्तित्व : भगवान महावीर		०-२५
अपने को पहचानिए		०-५०
अर्चना (पूजा संग्रह)		०-४०
मैं ज्ञानानंद स्वभावी हूँ (कैलेंडर)		०-५०
पंडित टोडरमल : जीवन और साहित्य		०-६५
कविवर बनारसीदास : जीवन और साहित्य		०-३०
सत्तास्वरूप		१-७०
सुंदरलेख बालबोध पाठमाला भाग १		प्रेस में
अनेकांत और स्याद्वाद		०-३५
युगपुरुष श्री कानजीस्वामी		१-००
वीतराग-विज्ञान प्रशिक्षण निर्देशिका		३-००
सत्य की खोज (भाग १)		२-००
आचार्य अमृतचंद्र और उनका पुरुषार्थसिद्धयुपाय	साधारण :	२-००
	सजिल्द :	३-००

Licence No.
P. P. 16-S.S.P. Jaipur City Dn.
Licensed to Post
Without Pre-Payment

If undelivered please return to :
प्रबन्ध-संपादक, आत्मधर्म
ए-४, टोडरमल स्मारक भवन, बापूनगर
जयपुर ३०२००४